संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

अंक : १५३ सितम्बर २००५ मूल्य : रु. ६/- हिन्दी

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित करने के साधन

पृष्ठ : १२

धानपुर, जि. दाहोद (गुज.) में हुए भण्डारे में अभावग्रस्त जनता-जनार्दन में वस्त्र, अनाज, बर्तन, दक्षिणा व अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ बाँटी गयीं, साथ ही सत्संग का पुण्यमय प्रसाद भी बाँटा पूज्य बापूजी ने। जिसे पाने के लिए उमड़ी भक्तों की भीड़ ने विशाल पंडाल को भी नन्हा कर दिया।

यह दृश्य है दाहोद (गुज.) में हुए भण्डारे का, जहाँ गरीब जनता-जनार्दन ने भोजन-प्रसाद से क्षुधातृप्ति और सत्संग-हरिकीर्तन से आत्मतृप्ति का भरपूर आस्वादन किया।

वर्ष : १६ अंक : १५३ सितम्बर २००५ भाद्रपद-आश्विन, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

अनुक्रम

प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित करने के साधन

अंत समय कुछ हाथ न आये...

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	रु. २००/-
(४) आजीवन	रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	रु. ३००/-
(४) आजीवन	रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	US $ 20
(२) द्विवार्षिक	US $ 40
(३) पंचवार्षिक	US $ 80
(४) आजीवन	US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : **'ऋषि प्रसाद'**, श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

अंत समय कुछ हाथ

संसार की कोई भी चीज केवल देखनेभर को तथा कहनेभर को ही हमारी है, आखिर में तो छूट ही जायेगी। जब चीज छूट जाय तब रोना पड़े, उसके वियोग का दुःख सहना पड़े उससे पहले ही उसकी असारता को समझकर उससे ममता हटा लें। जो छूटनेवाली चीज है उसे छूटनेवाली समझ लें और जो नहीं छूटनेवाला है, सदा साथ देनेवाला है उस आत्मा में प्रीति कर लें। व्यक्ति का ऐसा विवेक जग जाय तो बेड़ा पार हो जाय।

कवि उद्‌भट्ट के शब्द राजा भोज के अंतर्मन में शूल की भाँति चुभ गये। राजा मोह-निद्रा से जाग उठे, उनका विशुद्ध, निर्मल विवेक जागृत हुआ और वे नश्वर वैभव का क्षुद्र अहं त्यागकर शाश्वत पद की प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़े।

जिसके जीवन में विवेक नहीं है उसका जीवन नश्वर भोगों और ऐहिक आपाधापी में खत्म हो जाता है, बरबाद हो जाता है। अंत में कुछ भी हाथ नहीं लगता, तब वह पछताता है। मनुष्य को चाहिए कि अपनी विवेकदृष्टि सदा जागृत रखकर सफल जीवन जीने का यत्न करे। विवेकी मनुष्य किसी भी ऐहिक चीज-वस्तु या परिस्थिति में उलझेगा नहीं। धन हो, सत्ता हो, सामर्थ्य हो, मित्र-परिवार हो - सर्व प्रकार के ऐहिक सुख हों, पर विवेकी उनसे चिपकेगा नहीं, उनका उपयोग करेगा। मूर्ख आदमी उनमें आसक्त हो जायेगा, मोर-तोर की जेवरी में बँध जायेगा फिर अंतकाल में पछतायेगा।

एक रात राजा भोज अपने सर्वाधिक आरामदायक एवं मणियों से जड़े बहुमूल्य पलंग पर विश्राम कर रहे थे। अपने जीवनकाल में किये सर्वोत्कृष्ट कार्यों एवं महान उपलब्धियों पर उन्हें बहुत अभिमान हो रहा था। मानवहित के लिए उन्होंने अनेक उपयोगी कार्य किये थे, विविध लोकोपयोगी योजनाओं को कार्यान्वित किया था और प्रजा भी उन्हें भूदेव अर्थात् धरती का देव मानती थी।

वे विद्वानों का बहुत आदर करते थे एवं उनके विचारों, विशेषतः उनकी काव्य-रचनाओं को सुनकर उन्हें खूब पुरस्कार देते थे। काव्य-प्रेम और मानवता की सेवा उनके चरित्र के गौरव में सदैव वृद्धि करते रहते थे।

उनका कवि-हृदय कल्पनालोक में हिलोरें ले रहा था। मन में भाव आया कि 'मनुष्य-जीवन लोकहित के लिए ही प्राप्त हुआ है और मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि अपनी प्रजा की भलाई में लगा रहता हूँ तथा मेरी प्रजा भी मेरे कार्यों से प्रसन्न है।'

संयोग से पलंग पर लेटे-लेटे काव्य की कुछ पंक्तियाँ भाव-जगत में खोये उन कवि के हृदय में गंगाजी की तरंगों की भाँति लहराने लगीं और वे भाव-विभोर होकर गुनगुनाने लगे :

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः ।

अहा ! मुझे चित्त को मयूर की भाँति नृत्य से लुभानेवाली सुंदर कमनीय युवतियों का अक्षय प्यार व स्वभावानुकूल स्नेही मित्रों के संग का सुख मिला है, मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ!

इस पंक्ति को दोहरा-दोहराकर वे आत्मगौरव का अनुभव कर रहे थे। इन्द्रियसुख पाकर मनुष्य को अभिमान हो जाता है, फिर वह अहं-तृप्ति में ही सुख का अनुभव करता है।

राजा भोज सोच रहे थे कि किसी राजा को वह ऐश्वर्य नहीं मिला जो मुझे प्राप्त है। मेरे भाग्य में कितना अक्षय आनंद भरा हुआ है ! और इसी मिथ्या अतिशयानंद से उनके मन में कविता की एक और पंक्ति लहराने लगी। वे बोल उठे :

सद्बान्धवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भृत्याः ।

अपने स्नेही बंधुओं का साहचर्य और अनुरागी सेवकों की अटूट सेवावृत्ति मुझे मिली है, वाह... मेरा कितना अहोभाग्य है !

न आये...

वे उपरोक्त दोनों पंक्तियों का गर्व से पुनः-पुनः उच्चारण करते रहे और अधिकाधिक हर्ष-विभोर होते गये । कवि का हृदय कल्पनाओं का भंडार होता है और इसी कल्पना के संसार में उनका काव्य-निर्माण आगे बढ़ा।

कुछ देर और विचारमग्न हो वे तीसरी पंक्ति यों कहने लगे :

गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः ।

अर्थात् मेरे द्वार पर गर्व और शक्ति से संपन्न चंचल घोड़े हिनहिनाते हैं तथा बड़े-बड़े दाँतोंवाले मदमत्त हाथी चिंघाड़ते हैं । अहह ! मैं सर्वाधिक शक्तिसंपन्न हूँ। मेरे ऊपर भगवान की असीम कृपा है। मुझे अपने अद्वितीय भाग्य पर गर्व है, मैं कितना भाग्यशाली हूँ!

फिर तीनों पंक्तियों को एक साथ जोड़कर वे बार-बार हर्षित मन से उच्च स्वर में गाने लगे। बहुत देर तक वे काव्य में चतुर्थ पंक्ति जोड़ने का प्रयत्न करते रहे पर सफल न हो पाये।

अहंकार का विकार मनुष्य की नैतिक शक्ति का क्षय कर देता है, उसे विनाश के पथ पर ले जाता है। उसके अंदर का स्वार्थ उसे अपने प्रत्येक कार्य, बातचीत, आचार-व्यवहार से दूसरों पर अत्याचार करने के लिए उत्साहित करता है। वह काल्पनिक जगत में रहने लगता है।

राजा भोज मन-ही-मन अपने काव्य-जगत में विचरण कर रहे थे। अपने को हर प्रकार से धन्य समझ वे मिथ्या गर्व में चूर थे परंतु उनसे काव्य की चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी। तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

उनके पलंग के नीचे छिपे एक निर्धन, संस्कृत के कवि उद्भट्ट से और अधिक छिपा तथा चुप रहा नहीं गया। लक्ष्मीजी सदा उनसे रुष्ट ही रहती थीं। वे राजा भोज से कुछ दान-दक्षिणा की याचना करने आये थे, किंतु दण्ड के भय से पलंग के नीचे छिपकर ही रात काट रहे थे। वे भी संस्कृत के सिरमौर काव्यधर्मी थे। वे राजा के मिथ्या दर्प को सहन न कर सके और उन्होंने छिपे-छिपे नीचे से चौथी पंक्ति बोली :

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ।

हे राजन् ! यह ठीक है कि आपको अपने सत्कार्यों तथा पुण्यों से ये सब लौकिक संपदाएँ और सुख-वैभव प्राप्त हो गये हैं । आज आपको सांसारिक आनंद-उपभोग के समस्त भौतिक साधन भी उपलब्ध हैं, किंतु जीवन के अंतिम समय में जब मृत्यु की छाया में मनुष्य के नेत्र बंद होने लगते हैं, तब उसके पास कुछ भी नहीं रहता।

हे उदार-शिरोमणि ! यह सांसारिक सुख-वैभव तो क्षणिक एवं अस्थिर है । इन सब संपदाओं में स्थायी रूप से तुम्हारे साथ रहनेवाला कुछ भी नहीं है । सदा तुम्हारे साथ रहनेवाला, शाश्वत, अनादि-अनंत तो तुम्हारा अपना आत्मा ही है और उसका ज्ञान ही सदा टिकनेवाली संपदा है।

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ।

जीवन के अंतिम समय में जब मृत्यु की छाया में मनुष्य के नेत्र बंद होने लगते हैं, तब उसके पास कुछ भी नहीं रहता ।

क्षमा करें राजन् ! आपको अहंकार के क्षुद्र काल्पनिक जगत से निकालकर ठोस वास्तविकता की ओर आपका ध्यान दिलाने के नैतिक कर्तव्य ने मुझे यह चौथी पंक्ति जोड़ने पर विवश कर दिया।''

विनीत भाव से यह कह कवि उद्‌भट्ट बाहर निकलकर राजा के सामने खड़े हो गये। उनके शब्द राजा भोज के अंतर्मन में शूल की भाँति चुभ गये। राजा मोह-निद्रा से जाग उठे, उनका विशुद्ध, निर्मल विवेक जागृत हुआ और वे नश्वर वैभव का क्षुद्र अहं त्यागकर शाश्वत पद की प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़े।

अविनाशी आतम अमर, जग तातें प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल ॥

आत्मा सत्, चित् और आनंदस्वरूप है तथा शरीर असत्, जड़ और दुःखरूप है। आत्मा अमर, अपरिवर्तनशील है और शरीर मरणधर्मा, परिवर्तनशील है - ऐसा विवेक जिसका जग गया है वह परम विवेकी है।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथु एहू।
मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥

'जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब उसे संपूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय। विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) भगवान के चरणों में प्रेम होता है। मन, वचन और कर्म से भगवान के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है।' **(अयो.कां. : ९२.२-३)**

मंत्र-मंजूषा

श्रीहरि भगवान सदाशिव से कहते हैं : हे रुद्र ! भगवान श्रीगणेश का यह मंत्र '**ॐ गं गणपतये नमः**' *धन और विद्या प्रदान करनेवाला है। सौ बार इस मंत्र का जप करनेवाला प्राणी अन्य लोगों का प्रिय बन जाता है।*

(गरुड पुराण, आचार कांड, अध्याय : १८५)

वह अन्य लोगों का प्रिय तो होगा परंतु ईश्वर का प्रिय होने के लिए जपे तो कितना अच्छा होगा!

'गुरुग्रंथ साहिब' में
गुरु रामदासजी के वचन

'हरि रंगु पाइआ'

हरि नामा हरि रंगु है हरि रंगु मजीठै रंगु ।
गुरि तुठै हरि रंगु चाड़िआ फिरि बहुड़ि न होवी भंगु ॥
मेरे मन हरि राम नामि करि रंगु ।
गुरि तुठै हरि उपदेसिआ हरि भेटिआ राउ निसंगु ॥
मुंध इआणी मनमुखी फिरि आवण जाणा अंगु ।
हरि प्रभु चिति न आइओ मनि दूजा भाउ सहलंगु ॥
हम मैलु भरे दुहचारीआ हरि राखहु अंगी अंगु ।
गुरि अंम्रितसरि नवलाइआ सभि लाथे किलविख पंगु ॥
हरि दीना दीन दइआल प्रभु सतसंगति मेलहु संगु ।
मिलि संगति हरि रंगु पाइआ जन नानक मनि तनि रंगु ॥

'हे भाई ! हरिनाम का स्मरण व्यक्ति के भीतर प्रभुप्रेम पैदा करता है। यह प्रभुप्रेम मजीठ के रंग की तरह दृढ़ होता है। यदि गुरु प्रसन्न होकर शिष्य को एक बार हरिनाम के रंग से रँग दें तो बाद में उस रंग का कभी नाश नहीं होता। हे मेरे मन ! प्रभु के राम-नाम को रंग बना (और उसीमें अपने को रँग)। यदि गुरु संतुष्ट होकर तुझे सदुपदेश दें तो तू अवश्य निस्संगभाव से हरि में मिल जायेगा। जो अज्ञानी जीव स्वेच्छाचारी है, उसका जन्म-मरण का चक्र सदा बना रहता है। उसके हृदय में हरि-प्रभु अवस्थित नहीं होते, माया और मोह ही उसके संगी बने रहते हैं। हे हरि ! हम जीव विकारों के मैल से भरे हैं, हम कुकर्मी हैं। हे संरक्षक प्रभु ! हमारी रक्षा करो, हमारी सहायता करो। हे भाई ! गुरु ने जिस मनुष्य को आत्मिक जीवन देनेवाले नाम-जल के सरोवर में स्नान करा दिया, उसके भीतर के सारे पाप धुल जाते हैं और विकारों का मैल साफ हो जाता है। हे दीनों पर दया करनेवाले प्रभु ! मुझे सत्संगति दो। दास नानक का कथन है कि जिस मनुष्य ने सत्संगति पाकर परमात्मा का प्रेम प्राप्त कर लिया, उसका मन-तन उस प्रेम-रंग में रँग जाता है।'

विचाररूपी मित्र को साथ रखिये

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

जो मनुष्य विचार का आश्रय लेकर कर्म करते हैं, वे दुःखी नहीं होते, विफल नहीं होते। दुःखी और विफल तो वे होते हैं, बंधन में वे पड़ते हैं जो विचाररूपी मित्र को साथ लेकर कर्म नहीं करते। 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में वसिष्ठ महाराज श्रीरामजी से कहते हैं : ''जो भी कार्य करें विचारपूर्वक करें।'' कर्मों से बंधन न बढ़ायें, आसक्ति व पाप न बढ़ायें, अपितु शास्त्र और संत-सम्मत कर्म करें। पुण्यकर्म तो करें पर पुण्य का फल भोगने की अविचारी दृष्टि न रखें, फल ईश्वर को अर्पण कर दें। ऐसा करोगे तो बदले में ईश्वर ही मिल जायेगा। जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। शुभ-अशुभ कर्म का फल कर्ता को देर-सवेर भोगना ही पड़ता है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

इसलिए विचाररूपी मित्र को सदैव साथ रखना चाहिए। मनुष्य-जीवन में जो अविचार से जीते हैं, मजा लेने के लिए जीते हैं, वे धीरे-धीरे मन के गुलाम होकर फिर नारकीय यात्रा करते हैं और चौरासी के चक्र में पड़ते हैं। जो मनुष्य संत, शास्त्र या बड़े-बुजुर्गों के कहने के अनुसार अपने मन को वार (मोड़) नहीं सकता, उसका मन आवारा है। आवारा मन का आदमी सोचेगा कि 'अपनी तो नाक कटे, दूसरे की भी कटे।' वह अपने कार्यों से आप तो दुःखी होगा ही, अपने संरक्षक-पोषक को भी परेशान कर देगा। ऐसे व्यक्ति सुख-सुविधाएँ तो चाहते हैं पर आज्ञापालन व संयम-नियम से दूर भागते फिरते हैं। आजकल के बच्चे-बच्चियों में आवारापन बढ़ गया है। न उन्हें शास्त्रों का ज्ञान है, न उनका मन पर संयम है, न वे माँ-बाप की बात मानते हैं, फिर छिछला जीवन, दुःखी जीवन जीते हैं बेचारे ! दुःख इसलिए नहीं है कि उनके पास खाने-पीने को नहीं है, रहने को नहीं है बल्कि इसलिए है कि उनके मन पर न शास्त्र का अनुशासन है, न माँ-बाप का, न गुरुजनों का; न उनके पास अपना विवेक-विचार ही है।

पहले के जमाने में लोग संतों के, गुरुओं के पास जाते थे। वहाँ उन्हें सत्संग में शास्त्र-विचार, पुराणों की कथाएँ, भगवच्चर्चा सुनने को मिलती थी। घरों में भी 'श्रीरामचरितमानस', 'श्रीमद्भागवत', 'महाभारत' आदि की कथाएँ होती थीं। उन कथा-प्रसंगों से बेटे-बेटियों को, बहुओं को संस्कार मिलते थे कि 'यह करणीय है, यह अकरणीय है।' लोग गुरु के सान्निध्य से, शास्त्र-विचार से ऐसी सूझबूझ के धनी हो जाते थे कि भले बाहर से वे साधु-संत जैसे नहीं दिखते थे, पर अच्छे-अच्छे कहलानेवाले साधुओं को उपदेश देने का सामर्थ्य रखते थे।

जब तक व्यक्ति विचाररूपी मित्र की शरण नहीं लेता, शास्त्ररूपी हितैषी का मार्गदर्शन नहीं लेता, तब तक उसका मन उसे भटकाता ही रहता है। शास्त्र किसे कहते हैं ? **'शसनात् इति शास्त्रम्'** जो हमारे मन-इन्द्रियों को अनुशासित कर दे, मनमुखता से हटाकर ईश्वरोन्मुख कर दे। ईश्वरप्राप्ति का इरादा बनाकर प्रीतिपूर्वक शास्त्रों के अध्ययन व भगवन्नाम-जप से बुद्धि शुद्ध होती है।

आप अपने हृदय पर हाथ रखकर स्वयं से पूछें कि आप शास्त्र के, संत की आज्ञा के अनुसार कर्म करते हैं, व्यवहार करते हैं या इनके अनुसार आपका मन नहीं वरता (मुड़ता) और आप आवाराओं की नाईं कर्म करते हैं। विचारके कर्म करते हैं कि मन में जो आया वह करने लग जाते हैं। जो विचारकर कर्म करता है, विवेक से कर्म करता है और कर्म करने में कर्तृत्व-भाव नहीं रखता उसके हृदय में आत्मप्रकाश होता है।

आप विचारवान हों। विचार का आश्रय लेकर कर्म करें, ठगे न जायें। समय बड़ा कीमती है। किसीसे बेईमानी क्यों करना ? न आप ठगे जाओ न दूसरों को ठगो। न आप अज्ञानी रहो न दूसरों को अज्ञान में डालो। न आप चिंतित रहो न दूसरों की चिंता का निमित्त बनो। न आप बीमार पड़ो न दूसरों को बीमार करने की चीजें खिलाओ-पिलाओ। आप तो ऐसा करो कि आप भी प्रसन्न रहो और दूसरे भी प्रसन्न रहें। आप भी अपने परमात्म-स्वरूप को जान लो और दूसरे भी जान लें। **ईस्वर अंस जीव अबिनासी चेतन अमल सहज सुख रासी॥** **(श्रीरामचरित. उ.कां. : ११६.१)**

आप सहज सुखराशि हो। सुख बाहर क्या ढूँढ़ते हो, सुख तो अपने-आपमें है। 'मैं दुःखी हूँ' - ऐसा सोचोगे तो दुःख और बढ़ेगा। सुख-दुःख सपना है, उनको जाननेवाला पारमार्थिक चैतन्य आत्मा अपना है। उसी परमात्म-चैतन्य देव में गोता मारके खो जाओ और उसीके हो जाओ।

भगवद्भक्त प्रह्लाद

"हे दैत्यराज ! आप अपने इस आसुरी भाव को छोड़कर सबमें समभाव से परमात्मा को देखिये, फिर आपको पता लगेगा कि आपका ही क्या किसीका भी कहीं कोई शत्रु नहीं है ।"
– प्रह्लादजी

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी के निर्भीक एवं ओजस्वी वचनों को सुन दैत्यराज के शरीर में आग-सी लग गयी । क्रोध के मारे वह थर-थर काँपने लगा और तिरछी नजर से प्रह्लाद की ओर देखता हुआ घुड़ककर तिरस्कारयुक्त वचन बोला कि "रे दुष्ट राजकुमार ! बता जिसकी तू इतनी प्रशंसा करता है वह तेरा विष्णु कहाँ है ? वह सर्वव्यापी है तो क्या इस राजसभा में भी है ? यदि है तो दिखला कहाँ है ? अगर नहीं दिखलाता तो अब तेरा अंतिम समय आ गया है । अब तक हमने तुझे अपना पुत्र समझकर अपने हाथों तेरा वध करना उचित नहीं समझा था, अब ऐसा प्रतीत होता है कि तेरी मृत्यु हमारे ही हाथों है । शीघ्र दिखला तेरा विष्णु कहाँ है ?" यों कहते-कहते दैत्यराज आपे से बाहर हो गया और बोला :

"रे उद्दंड, मंदबुद्धि, कुलांगार, अधम ! मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले ! तुझको मैं अभी यमलोक में पहुँचाता हूँ । जिसके कुपित होते ही लोकपालों सहित तीनों लोक थर-थर काँपने लगते हैं, उस मेरे जैसे पराक्रमी की आज्ञा का अरे मूढ़ ! तू किसके बल पर निडर हो उल्लंघन कर रहा है ?"

ईश्वर में दृढ़ आस्था रखनेवाले प्रह्लादजी ने शांति और गंभीरता के साथ उत्तर दिया : "हे दैत्यराज ! जिन्होंने ब्रह्मा से लेकर तिनके तक समस्त स्थावर-जंगम जगत को अपने वश में कर रखा है, वे भगवान ही मेरे बल हैं; मेरे ही नहीं, आपके और अन्यान्य सबके बल भी वे ही हैं । वे ही महापराक्रमी, सर्वशक्तिमान प्रभु काल हैं तथा समस्त प्राणियों के इन्द्रियबल, मनोबल, देहबल, धैर्य एवं इन्द्रिय भी वे ही हैं । वे ही तीनों गुणों के स्वामी अपनी परम शक्ति से विश्व की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं । आप अपने इस आसुरी भाव को छोड़कर सबमें समभाव से परमात्मा को देखिये, फिर आपको पता लगेगा कि आपका ही क्या किसीका भी कहीं कोई शत्रु नहीं है । कुमार्ग पर चलनेवाला न जीता हुआ मन ही सबका परम शत्रु है । अतएव मन को वश में करके समत्व को प्राप्त होना ही अनंत भगवान की प्रमुख आराधना है । कुछ मूर्ख लोग अपने अंदर रहनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद और मत्सर - इन छः डाकुओं को जीते बिना ही मान बैठते हैं कि हमने दसों दिशाओं को जीत लिया है। हाँ, जिस ज्ञानी एवं जितेन्द्रिय महात्मा ने समस्त प्राणियों के प्रति समता का भाव प्राप्त कर लिया है, उसके अज्ञान से पैदा होनेवाले काम-क्रोधादि शत्रु भी मर-मिट जाते हैं; फिर बाहर के शत्रु तो रहें ही कैसे ?

पिताजी ! आप क्रोध न कर शांत हों। दैत्यों के नहीं, अपने मन के राजा बन क्रोधादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। अभी भी समय है, अब भी आप उन करुणा-वरुणालय की भक्ति में चित्त लगाइये। फिर आप देखेंगे कि मेरा वह प्रभु आपकी इस राजसभा में विद्यमान है। यदि आप ऐसा करें तो आप आज ही से परम सुखी और संतुष्ट होकर परम पद को प्राप्त कर सकते हैं।''

प्रह्लादजी के इन वचनों को सुन हिरण्यकशिपु क्रोध से अधीर हो उठा और बोला :

''रे मंदबुद्धि ! अब निश्चय ही तेरी मरने की इच्छा है। **विनाशकाले विपरीतबुद्धिः** - ठीक ही कहा गया है, इसीसे तू हमारे सामने धृष्टता के साथ अनाप-शनाप बक रहा है। तुझको इसका फल अभी मिलेगा। अच्छा ! जब तू अपने विष्णु को हमारी सभा में भी बतलाता है और उसे जगदीश्वर मानता है तो दिखला वह कहाँ है ? क्या इस सामनेवाले खंभे में भी वह है ? यदि है तो जल्दी दिखला, नहीं तो मैं अभी तेरा सिर इसी तलवार के द्वारा धड़ से अलग किये देता हूँ। देखता हूँ तेरा वह सर्वस्व हरि, जिस पर तुझे इतना भरोसा है, तुझे कैसे बचाता है ?''

प्रह्लादजी ने पिता को प्रणाम कर, हाथ जोड़के कहा कि ''पूज्य पिताजी ! आप शांत हों, क्रोध न करें। मैंने मिथ्या नहीं सत्य ही कहा है। मेरे विष्णु सर्वव्यापी हैं और इस खंभे में भी हैं। भगवन् ! देखिये, मुझे तो वे इस खंभे में स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। मैं नहीं कह सकता आपको भी दिखलायी पड़ते हैं या नहीं।''

परम भागवत प्रह्लादजी के इन वचनों को सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु राजसिंहासन से सहसा कूद पड़ा, क्रोध के आवेश में प्रह्लादजी को न जाने कितने कटु वचन कहता हुआ खड्ग लेकर भाँति-भाँति के रत्नों एवं मोतियों की झालरों से सुशोभित सामने के स्फटिक-स्तंभ की ओर लपककर उस पर बड़े जोर-से मुष्टि-प्रहार किया। मुष्टि-प्रहार के शब्द के साथ ही खंभे में से सहसा ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे तीनों लोक और चौदहों भुवन शब्दायमान हो गये। (क्रमशः)
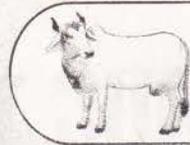
गौधूलि-महिमा

सनातन संस्कृति में गौ को माता की उपमा दी गयी है। गौमाता में सभी देवताओं का निवास माना जाता है। वेदों, पुराणों, स्मृतियों व महाभारत, रामायण आदि सभी शास्त्रों में गौमाता की महिमा का गान किया गया है।

गौमाता के दूध, दही, घी, गोबर व झरण की तो महिमा है ही, उसके चरणों की धूलि की भी शास्त्रों ने मुक्त कंठ से महिमा गायी है।

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में आता है :

सर्वे देवा गवामंगे तीर्थानि तत्पदेषु च।
तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः।
तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

'गौ के शरीर में समस्त देवगण और पैरों में समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गौ के गुह्यभाग में लक्ष्मी सदा रहती हैं। गौ के पैरों में लगी हुई मिट्टी का तिलक जो मनुष्य अपने मस्तक पर लगाता है, वह तत्काल तीर्थजल में स्नान करने का पुण्य प्राप्त करता है और पग-पग पर उसकी विजय होती है। जहाँ गौएँ रहती हैं उस स्थान को तीर्थभूमि कहा गया है, ऐसी भूमि में जिस मनुष्य की मृत्यु होती है उसकी तत्काल सद्गति हो जाती है, यह निश्चित है।'

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खंड : २१.९१-९३)

ब्रह्मलीन स्वामी रामसुखदासजी ने अपनी वसीयत में लिखा था कि 'यदि गंगा किनारे मेरे शरीर का अंतिम संस्कार न कर सकें तो जहाँ गायें आती-जाती हों, ऐसे गौधूलि से युक्त स्थान पर मेरा अंतिम संस्कार किया जाय।' इतने उच्चकोटि के महापुरुष भी गौधूलि के, गौरज के निकट अपनी अंतिम यात्रा चाहते हैं। निगुरा, मनमुख क्या जाने इन रहस्यों को ?

प्रश्नोत्तर

(ब्रह्मलीन स्वामी रामसुखदासजी के साथ प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : भगवान मीठे कैसे लगें ?

उत्तर : भगवान मीठे लगेंगे संसार खारा लगने से।

प्रश्न : संसार अच्छा नहीं लगता, फिर भी भोगों में फँस जाते हैं, क्या करें ?

उत्तर : वास्तव में संसार ही अच्छा लगता है। यदि संसार बुरा लगे तो भोगों में फँस ही नहीं सकते।

प्रश्न : संसारी सुख-लोलुपता छोड़ने का उपाय क्या है ?

उत्तर : उपाय है - सत्संग।

प्रश्न : जप, ध्यान आदि साधन करने की सार्थकता क्या है ?

उत्तर : जप, ध्यान आदि से विवेक का विकास होता है, भगवान की सम्मुखता प्राप्त होती है, अंतःकरण में पारमार्थिक रुचि पैदा होती है और संसार का महत्त्व कम होता है। ऐसा होने पर सार से सम्बंध-विच्छेद और भगवान में प्रेम हो जाता है।

प्रश्न : भोगों के पुराने संस्कार पुनः भोगों में लगाते हैं, ऐसी स्थिति में साधक क्या करे ?

उत्तर : पुराने संस्कार इतने बाधक नहीं हैं, जितनी सुख-लोलुपता बाधक है। सुख-लोलुपता होने से ही संस्कार बाधक होते हैं। हम पुराने संस्कारों से सुख तो लेते हैं और चाहते हैं कि संस्कार न आयें, तभी संस्कार हमें बाध्य करते हैं। अगर उनसे सुख न लें तो संस्कार मिट जायेंगे, बाध्य नहीं करेंगे। कारण कि वास्तव में संस्कारों की सत्ता ही नहीं है। उनको हम ही सत्ता देते हैं। भोग के समय भी हम ही भोग को सत्ता देते हैं। भोगों से सुख लेते हैं, इसी पर भोग टिके हैं। सुख न लें तो भोग हो ही नहीं सकता। सुख न लें तो बिना मिटाये भोग का संस्कार स्वतः कमजोर पड़ जायेगा। सुख लेने से पुराना संस्कार (नया भोग भोगने के समान) नया होता रहता है।

पुराने संस्कार आयें तो साधक उनकी उपेक्षा कर दे, न विरोध करे न अनुमोदन करे। असत् का संस्कार भी असत् ही होता है। असत् की सत्ता है ही नहीं - **'नासतो विद्यते भावो।'** **(श्रीमद्भगवद्गीता : २.१६)**

हम पुराने संस्कारों से सुख तो लेते हैं और चाहते हैं कि संस्कार न आयें, तभी संस्कार हमें बाध्य करते हैं। अगर उनसे सुख न लें तो संस्कार मिट जायेंगे, बाध्य नहीं करेंगे।

प्रश्न : अंत समय में भगवान की याद आये, इसके लिए क्या करें ?

उत्तर : हर समय भगवान का स्मरण करें, क्योंकि हर समय ही अंतकाल है। मृत्यु कब आ जाय, इसका क्या पता ? इसलिए भगवान ने 'गीता' में कहा है : **तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।** (८.७) 'इसलिए तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।'

सफलता की कुंजी : आत्मविश्वास

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

'आत्मविश्वास' यानी अपने-आप पर विश्वास। जीवन में सफलता पाने के लिए आत्मविश्वास का होना अति आवश्यक है। आत्मविश्वास ही सभी सफलताओं की कुंजी है। जिस व्यक्ति के जीवन में यह सद्गुण नहीं है वह बलवान होते हुए भी कायर सिद्ध होता है, पढ़ा-लिखा होते हुए भी अनपढ़ सिद्ध होता है। आत्मविश्वास की कमी होना, स्वयं पुरुषार्थ न करके दूसरे के भरोसे अपना कार्य छोड़ना - यह अपने साथ अपनी आत्मिक शक्तियों का अनादर करना है। ऐसा व्यक्ति जीवन में असफल रहता है। जो अपने को दीन-हीन, अभागा न मानकर अजन्मा आत्मा, अमर चैतन्य मानता है, उसको दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ईश्वर व ईश्वरीय शक्तियों का पुंज उसके साथ है।

आत्मविश्वास मनुष्य की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करके उसे दिशा प्रदान करता है। आत्मविश्वास से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक शक्तियों का मात्र विकास ही नहीं होता बल्कि ये सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके इशारे पर नाचती हैं।

आत्मविश्वास सुदृढ़ करने के लिए प्रतिदिन शुभ संकल्प व शुभ कर्म करने चाहिए तथा सदैव अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। जितनी ईमानदारी व लगन के साथ हम इस ओर अग्रसर होंगे, उतनी ही शीघ्रता से आत्मविश्वास बढ़ेगा। फिर कैसी भी विकट परिस्थिति आने पर हम डगमगायेंगे नहीं बल्कि धैर्यपूर्वक अपना मार्ग खोज लेंगे।

फिर भी यदि कोई ऐसी परिस्थिति आ जाय जो हमें हमारे लक्ष्य से दूर ले जाने की कोशिश करे तो परमात्म-चिंतन करके, 'ॐ' का दीर्घ उच्चारण करते हुए हमें ईश्वर की शरण चले जाना चाहिए। इससे आत्मबल बढ़ेगा, खोया हुआ मनोबल फिर से जागृत होगा।

सभी महान विभूतियों एवं संत-महापुरुषों की सफलता व महानता का रहस्य आत्मविश्वास, आत्मबल व सदाचार में ही निहित रहा है। उनके जीवन में कितनी ही प्रतिकूल व कठिन परिस्थितियाँ आयीं, वे घबराये नहीं, आत्मविश्वास व निर्भयता के साथ उनका सामना किया और महान हो गये। शिवाजी ने आत्मविश्वास के बल पर ही १६ वर्ष की उम्र में तोरणा का किला जीत लिया था। पूज्यपाद लीलाशाहजी महाराज ने २० वर्ष की उम्र में ही ईश्वर की अनुभूति कर ली। महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर महाराज झुंड-के-झुंड विरोधियों के बीच किशोर अवस्था से ही डटे रहे। दुबले-पतले महात्मा गाँधी ने आत्मविश्वास के बल पर ही कुटिल अंग्रेजों से लोहा लिया और 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो' का नारा लगाकर अंग्रेज शासकों को भारत छोड़के भागने पर मजबूर कर दिया।

अतः कैसी भी विषम परिस्थिति आने पर घबरायें नहीं बल्कि आत्मविश्वास जगाकर आत्मबल, साहस, उद्यम, बुद्धि व धैर्य पूर्वक उसका सामना करें और अपने लक्ष्य को पाने का संकल्प दृढ़ रखें।

जो अपने को दीन-हीन, अभागा न मानकर अजन्मा आत्मा, अमर चैतन्य मानता है, उसको दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ईश्वर व ईश्वरीय शक्तियों का पुंज उसके साथ है।

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल ॥

विजयादशमी पर्व

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

जो अपने आत्मा को 'मैं' और व्यापक ब्रह्म को 'मेरा' मानकर स्वयं को प्राणिमात्र के हित में लगाके अपने अंतरात्मा में विश्रांति पाता है वह राम के रास्ते है। जो शरीर को 'मैं' व संसार को 'मेरा' मानकर दसों इन्द्रियों द्वारा बाहर की वस्तुओं से सुख लेने के लिए सारी शक्तियाँ खर्च करता है वह रावण के रास्ते है।

हमारा चित्त प्रेम और शांति का प्यासा है। जब विषय-विकारों में प्रेम हो जाता है और उन्हें भोगकर सुखी होने की रुचि होती है तो हमारा नजरिया रावण जैसा हो जाता है। सदा कोई वस्तु नहीं, व्यक्ति नहीं, परिस्थिति नहीं, सदा तो अपना आपा है और सर्वव्यापक रूप में परमात्मा है। आपा और परमात्मा ये सदा सत्य हैं, सुखस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, नित्य नवीन रस से पूर्ण हैं। अगर सुविधाओं का सदुपयोग सत् और शांति में प्रवेश पाने के निमित्त करते हैं तो यह राम का नजरिया है।

तो दशहरा (विजयादशमी) यह संदेश देता है कि जो दसों इन्द्रियों से सांसारिक विषयों में रमण करते हुए उनसे मजा लेने के पीछे पड़ता है वह रावण की नाईं जीवन-संग्राम में हार जाता है और जो इन्हें सुनियंत्रित करके अपने अंतरात्मा में आराम पा लेता है तथा दूसरों को भी आत्मा के सुख की तरफ ले जाता है वह राम की नाईं जीवन-संग्राम में विजय पाता है और अमर पद को भी पा लेता है।

इन्द्रिय-सुख की लोलुपता रावण के रास्ते ले जाती है तथा संत-महात्माओं द्वारा बतायी गयीं कुंजियाँ जीवन में राम का रस जगाती हैं और जीव देर-सवेर अपने वास्तविक स्वरूप को पा लेता है।

श्रीराम और रावण दोनों शिवभक्त थे, दोनों बुद्धिमान व सूझबूझ के धनी थे। कुल-परंपरा की दृष्टि से देखा जाय तो रावण पुलस्त्य ऋषिकुल का ब्राह्मण और रामजी रघुकुल के क्षत्रिय हैं। कुल भी दोनों के ऊँचे और अच्छे हैं पर रावण भोग भोगके, शरीर को सुविधा देकर, बाहर के बड़े पद पाके बड़ा बनना चाहता था; संसारी रस पाकर सुखी होना चाहता था, अपने अंदर के रस का उसको पता नहीं था। रामजी अपने अंतरात्मा के रस में तृप्त थे, उनके नेत्र भगवद्रस बरसाते थे। जो लोग उन्हें देखते वे भी आनंदित हो जाते थे। श्रीरामजी जब रास्ते से गुजरते तब लोग घरों से, गलियों से रास्ते पर आ जाते और 'रामजी आये, रामजी आये !' कहके दर्शन कर आनंदित, उल्लसित होते। जब रावण रास्ते से गुजरता तब लोग भय से 'रावण आया, रावण आया!' कहके गलियों और घरों में घुस जाते।

भोगी और अहंपोषक रुलानेवाले रावण जैसे होते हैं तथा योगी व आत्मारामी महापुरुष लोगों को तृप्त करनेवाले रामजी जैसे होते हैं। रामजी का चिंतन-सुमिरन आज भी रस-माधुर्य देता है, आनंदित करता है।

कहाँ रामजी अंतरात्मा के रस में, निजस्वरूप के ज्ञान में सराबोर और कहाँ रावण क्षणिक सांसारिक सुखों में रस खोज रहा था ! रामजी को बचपन में ही वसिष्ठजी का सत्संग मिला था। 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में वसिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! जो मन को सत्ता देता है, बुद्धि को बल देता है, जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न होती है, शरीर कई बार पैदा होकर मर जाता

है फिर भी जो नहीं मरता वह अमर आत्मदेव तुम्हारा अंतरात्मा होकर बैठा है, तुम उसीको जानो।''

रामजी को वसिष्ठजी से इतना ऊँचा ज्ञान मिला तो वे अंतरात्मा के रस से तृप्त हो गये। रावण ने 'यह पा लूँ, यह इकट्ठा कर लूँ' ऐसा करके अपना सारा जीवन यश, वस्तुओं एवं भोग-पदार्थों को सँजोने में लगा दिया, पर अंत में उसे खाली हाथ ही जाना पड़ा।

राम और रावण का युद्ध तो पूरा हो गया पर आपके-हमारे ज़ीवन में तो युद्ध चालू ही है। शुभ विचार धर्म-अनुशासित कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं, अशुभ विचार धर्म-विरुद्ध कर्म करवाते हैं; पत्नी कुछ चाहती है, पति कुछ चाहता है; बेटी कुछ चाहती है, बेटा कुछ चाहता है; नीति कुछ कहती है, व्यवस्था कुछ कहती है... तो इस प्रकार के युद्ध में जीव बेचारा हार न जाय इसलिए उसका मार्गदर्शन करते हुए तुलसीदासजी ने कहा है :

तुलसी हरि गुरु करुणा बिना
बिमल बिबेक न होइ।

भगवान और सद्गुरु की कृपा के बिना, सत्संग के बिना विवेक नहीं जगता कि वास्तविक सुख कहाँ है, मनुष्य-जीवन क्यों मिला है ? सद्गुरु की कृपा-प्रसादी के बिना जीव बेचारा एक-दो दिन नहीं, एक-दो साल नहीं, एक-दो जन्म नहीं, युगों से रस खोज रहा है, शांति खोज रहा है पर उसको पता नहीं है कि वास्तविक रस व शांति कहाँ हैं ? इसलिए उसे सद्गुरु के सान्निध्य और सत्संग की आवश्यकता है।

संतों के सान्निध्य से 'जीवन में वास्तव में क्या करणीय है, क्या अकरणीय है ? जीवन की उत्कृष्टता किसमें है ? मृत्यु आ जाय उससे पहले जानने योग्य क्या है ?' यह जान लिया तो आपने संत-सान्निध्य का लाभ उठाया, मनुष्य-जीवन के ध्येय को पा लिया।

इन्द्रिय-सुख की लोलुपता रावण के रास्ते ले जाती है तथा संत-महात्माओं द्वारा बतायी गयीं कुंजियाँ जीवन में राम का रस जगाती हैं और जीव देर-सवेर अपने वास्तविक स्वरूप को पा लेता है, जिसके लिए उसे मनुष्य-जीवन मिला है।

(नवरात्र : ४ से १२ अक्टूबर)

आद्यशक्ति की उपासना का पर्व : शारदीय नवरात्र

आश्विन शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से नवमी तिथि तक का पर्व शारदीय नवरात्र के रूप में जाना जाता है। यह व्रत-उपवास, आद्यशक्ति माँ जगदम्बा के पूजन-अर्चन व जप-ध्यान का पर्व है।

'देवी भागवत' में आता है कि विद्या, धन व पुत्र के अभिलाषी को नवरात्र-व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। जिसका राज्य छिन गया हो, ऐसे नरेश को पुनः गद्दी पर बिठाने की क्षमता इस व्रत में है। नवरात्र में प्रतिदिन देवी-पूजन, हवन व कुमारी-पूजन करें तथा ब्राह्मण-भोजन करायें तो नवरात्र-व्रत पूरा होता है - ऐसी उक्ति है।

नवरात्र के दिनों में भजन-कीर्तन गाके, वाद्य बजाके और नाचकर बड़े समारोह के साथ उत्सव मनाना चाहिए। भूमि पर शयन एवं यथाशक्ति कन्याओं को भोजन कराना चाहिए किंतु एक वर्ष व उससे कम उम्र की कन्या नहीं लेनी चाहिए। २ से १० वर्ष तक की कन्या को ही लिया जा सकता है।

'देवी भागवत' में कहा गया है कि दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करनेवाली भगवती भद्रकाली का अवतार अष्टमी तिथि को हुआ था। मनुष्य यदि नवरात्र में प्रतिदिन पूजन करने में असमर्थ हो तो अष्टमी के दिन उसे विशेष रूप से पूजन करना चाहिए।

यदि कोई पूरे नवरात्र के उपवास न कर सकता हो तो सप्तमी, अष्टमी और नवमी - तीन दिन उपवास करके देवी की पूजा करने से वह सम्पूर्ण नवरात्र के उपवास के फल को प्राप्त करता है।

नवरात्र पर जागरण

नवरात्र पर उत्तम जागरण वह है, जिसमें -

(१) शास्त्र-अनुसार चर्चा हो (२) दीपक हो (३) भक्तिभाव से युक्त माँ का कीर्तन हो (४) वाद्य, ताल आदि से युक्त सात्त्विक संगीत हो (५) प्रसन्नता हो (६) सात्त्विक नृत्य हो, ऐसा नहीं कि डिस्को या अन्य कोई पाश्चात्य नृत्य किया (७) माँ जगदम्बा पर नजर हो, ऐसा नहीं कि किसीको गंदी नजर से देखा (८) मनोरंजन सात्त्विक हो; रस्साकशी, लाठी-खेंच आदि कार्यक्रम हों।

प्रज्ञा को परमात्मा
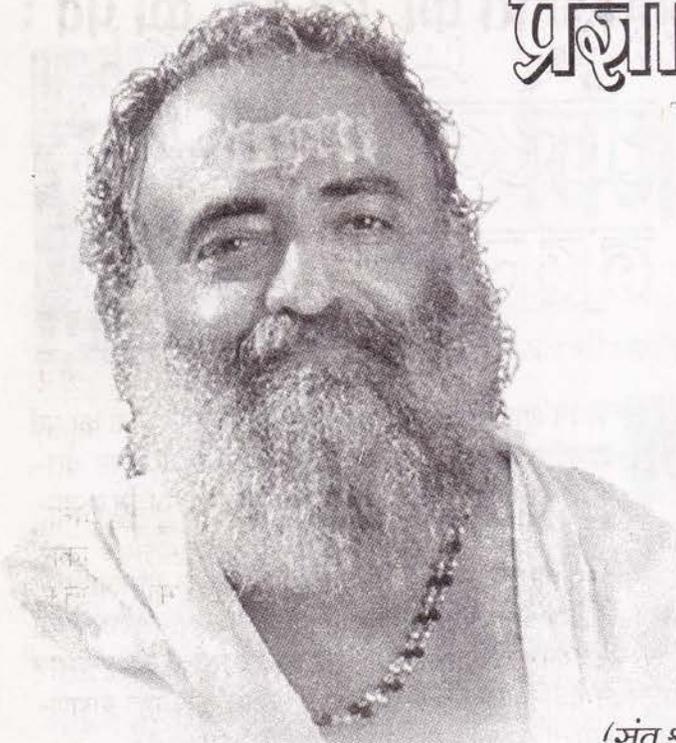
आप किस-किस प्रिय वस्तु से चिपकोगे और किस-किस अप्रिय से भिड़ोगे, बहने दो इस धारा को। इस जीवन-प्रवाह में प्रिय-अप्रिय सब बहता चला जायेगा। अपने बड़प्पन को याद करके अहंकार मत करो और छोटेपन को याद करके अपने को कोसो मत, उद्विग्न मत होओ और आकांक्षा मत करो कि 'अब यह हो जाय, वह हो जाय...' जो होगा ठीक होगा, देखा जायेगा।

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

'उन निरंतर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १०.१०)

जगत में जितने भी दुःख, शोक, क्लेश हैं वे सारे-के-सारे बुद्धि की मंदता के कारण, प्रज्ञापराध के कारण ही हैं।

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम्।
प्रज्ञापराधो मूलं सर्वदोषाणाम्।

'सब रोगों, सब दोषों का कारण प्रज्ञापराध अर्थात् प्रज्ञा की मंदता है।'

प्रज्ञा जब स्थूल होती है तब मन उससे सारे अकरणीय कर्म, अकरणीय निर्णय करवा लेता है और वह अकरणीय आसक्तियों के जाल में फँस जाती है। अगर जीवन में छः साधन अपनाये जायें तो प्रज्ञा निर्मल हो जायेगी और निर्मल प्रज्ञा में परमात्मा का अनुभव होगा।

यदि प्रज्ञा मलिन है तो वह मन के चक्कर में आ जाती है, मन विषयों के चक्कर में आ जाता है और जीव बेचारा चौरासी के चक्कर में भटकता रहता है। इसलिए अपनी बुद्धि को परमात्मा में स्थिर करो।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।** (२.६८) अर्थात् जैसे अज्ञानी की देह में सुदृढ़ आसक्ति होती है, वैसे ही जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप अपना-आपा है, उसमें उस महापुरुष की प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो जाती है।

प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित करने के लिए महापुरुषों ने बड़े सुंदर, बड़े हितकारी, बड़े सूक्ष्म और सफलता की पक्की प्रत्याभूति (गारंटी) देनेवाले छः साधन बताये हैं।

पहला साधन है - अपने मन में हीनता के विचार न लाना। आप चाहे जाति से छोटे हों, कर्मों से छोटे हों, धन से छोटे हों, बुद्धि से छोटे हों, कितनी भी हीनता क्यों न हो आपमें, आप अपनी दीनता-हीनता को याद करके अपने को ईश्वरप्राप्ति हेतु अयोग्य न बनायें।

'मैं कुछ नहीं कर सकता... क्या करूँ मैं पापी हूँ...

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम् ।

में प्रतिष्ठित करने के साधन

मेरे से यह अपराध हो गया...' इस तरह का चिंतन करके अपने में हीनता न लायें, अपने को कोसें नहीं बल्कि भगवान की शरण जायें। आपके अपराध और पाप में इतनी ताकत नहीं कि भगवान की करुणा और कृपा के आगे जोर मार सकें, ठहर सकें। आपकी जो भी दीनता, हीनता, अपराध और पाप हैं, उनसे कई गुना ज्यादा भगवान की कृपा में सामर्थ्य है। आप कैसे भी हों, भगवान के होकर सब कुछ पा सकते हैं, सब कुछ कर सकते हैं क्योंकि सब कुछ जिसका है वह सबका है और आपका भी है। इसलिए हीनता के विचार हटाकर 'नारायण, राम, कृष्ण, हरि, ॐ...' इस प्रकार सामर्थ्यदायी भगवन्नामों का उच्चारण करते हुए 'वह सर्वेश्वर, परमेश्वर हमारे साथ है...' - इस भाव से अपने अंदर विधेयात्मक विचार भरो।

'मेरा कोई नहीं' - ऐसा विचारकर अपने को कोसो मत, सताओ मत, अपने में हीनता न लाओ। 'सारे ब्रह्मांड को जो चला रहा है, वह सर्वाधार मेरा है। दूसरे का हो चाहे न हो लेकिन तू मेरा तो है प्रभु !' - इस प्रकार दृढ़ चिंतन करके अपनी प्रज्ञा की रक्षा करो, प्रज्ञा में हीनता न लाओ। सत्कर्म करके ईश्वर या गुरु, किसीके साथ भी अपनी प्रज्ञा को जोड़ो।

दूसरा साधन है - जीवन-प्रवाह में तटस्थ, अविचल रहना। जैसे गंगाजी बहती जा रही हैं... उनमें फूल भी पड़ते हैं और अस्थि-हड्डियाँ भी विसर्जित की जाती हैं परंतु सब बह जाता है, ऐसे ही जीवन-प्रवाह में प्रिय भी आता है - बह जाता है, अप्रिय भी आता है - बह जाता है; सुख भी आता है - गुजर जाता है, दुःख भी आता है - गुजर जाता है; यश भी आता है - चला जाता है, अपयश भी आता है - चला जाता है; हितैषियों की शुभकामनाएँ भी आती हैं, द्वेषियों की द्वेषपूर्ण निंदा और लांछन भी आते हैं - सब चले जाते हैं... जीवन-प्रवाह ऐसे ही चलता रहता है।

आप किस-किस प्रिय वस्तु से चिपकोगे और किस-किस अप्रिय से भिड़ोगे, बहने दो इस धारा को। इस जीवन-प्रवाह में प्रिय-अप्रिय सब बहता चला जायेगा। अपने बड़प्पन को याद करके अहंकार मत करो और छोटेपन को याद करके अपने को कोसो मत, उद्विग्न मत होओ और आकांक्षा मत करो कि 'अब यह हो जाय, वह हो जाय...' जो होगा ठीक होगा, देखा जायेगा।

हम आकांक्षाएँ करके बड़ी तकलीफ पैदा करते हैं। किसी शत्रु ने निंदा की तो सोचते हैं कि 'शत्रु का ऐसा हो जाय... वैसा हो जाय...' मित्र है तो 'उसकी हानि न हो जाय...' हानि होगी तो होगी, व्यर्थ चिंता क्यों करना ? आप अपनी तरफ से प्रयत्न करो, चिंता न करो, उद्विग्न मत होओ और आकांक्षाएँ न करो।

तीसरा साधन है - शुभ करना और अशुभ से बचना, परंतु 'यह शुभ है... यह अशुभ है...' - इस प्रकार आसक्ति या द्वेष से प्रेरित होकर शुभ-अशुभ के चिंतन में न फँसना।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है - वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : १२.१७)**

जीवन में शुभ-अशुभ हो ही जाता है। जैसे जीवन में अमावस्या और पूनम, दोपहर और मध्यरात्रि आती ही रहती हैं, वैसे ही कई बार न चाहते हुए भी अशुभ हो जाता है और चाहते हुए भी शुभ नहीं कर पाते हैं।

जीवन बहती धारा है, इसमें आप कहीं भी रुकें नहीं। **चरैवेति चरैवेति...** आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।

परमात्म-ज्ञान के सुयोग्य बनने का चौथा साधन है- संयम रखना एवं पर्याप्त निद्रा, पर्याप्त विश्राम लेना।

मन-इन्द्रियों को विषयों की ओर दौड़ने से रोकें। हमारी आँख गलत जगह पर न जाय, हमारा मन गलत चिंतन में न उलझे - इस प्रकार का संयम रखें।

चिंता लेकर या थकान के विचार लेकर निद्रा न करें। जैसे बालक निर्दोषचित्त होकर माँ की गोद में अपने को डाल देता है, ऐसे ही आप भी उस नारायणरूपी माँ की गोद में उसीका ध्यान-चिंतन करते हुए निश्चिंत होकर लेट जायें कि 'मैं उस परमात्मा में, ईश्वरीय सुख में

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वदोषाणाम् ।

विश्रांति पा रहा हूँ... मैं निश्चिंत हूँ... जो होगा प्रभु जानें।'

जब आप निश्चिंत होकर भगवान में गोता लगाते हैं तो प्रकृति आपकी कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य करती है। आप उस परमात्मा का भरोसा छोड़कर 'हाय-हाय' करते हैं, अधीर हो जाते हैं तो अनजाने में और बड़ी गलती कर लेते हैं। आप अपना संतुलन खोकर अनुचित कर्म न करें, धीरज रखें।

पाँचवाँ साधन है - ऐन्द्रिक शक्ति को विषयों के अधीन न रखना। कहीं पड़ोसी के यहाँ जलेबी बन रही है, उसकी गंध आयी तो मुँह में पानी आ गया और मन उसे पाने के लिए गिड़गिड़ाने लगा। कहीं छौंक लगाया गया, उसकी सुगंध आयी और आप लाचार हो गये कि 'इसके घर क्या बना है, जाकर जरा स्वाद ले लें...' नहीं। अपने मन पर थोड़ा काबू रखें।

जो बालक सुशील, संस्कारवान होते हैं उन्हें जब कोई मनपसंद मिठाई आदि लेने के लिए कहता है तो ललचाते नहीं हैं। कभी उनके मुँह में पानी आ भी जाय तो भी माँ की तरफ देखते हैं कि उसकी आँखें लेने के लिए इनकार कर रही हैं या अनुमति दे रही हैं। यदि माँ इनकार का इशारा करती है तो बालक चीज नहीं लेगा और यदि वह इशारा करती है कि 'बेटा ! ले लो' तो ही वह लेगा। अच्छे घर के बच्चों का अपने मन पर इतना नियंत्रण होता है तो तुम्हारा घर तो अच्छे में अच्छा है, तुम तो भगवान के घर के हो। मन को समझाओ और नियंत्रण में रखो।

देखी किसीकी कुछ खाने-पीने की चीज, मन में आया : 'चलो ! हम भी खा लें' अथवा 'फलाना यह कर रहा है तो हम भी क़र लें' नहीं, उस समय विचार करो कि 'इसके बिना चल सकता है कि नहीं ? चल सकता है तो मैं इन चीजों का दास क्यों बनूँ ?' स्वास्थ्य के अनुकूल है तो भले थोड़ा ले लिया परंतु वस्तु के दास बनकर उसे न भोगो। वस्तुओं का उपयोग करो जैसे औषध का करते हैं। भोजन बढ़िया है और दो ग्रास ज्यादा ठाँस लिये तो वे बीमारी पैदा करेंगे। इसलिए कोई बढ़िया चीज है तो उसे बाँटो। इस प्रकार ऐन्द्रिक शक्ति को मजबूत रखो ताकि वह विषयों के अधीन न हो।

छठा साधन है - अंतरंग तत्त्वदर्शन।

मति न लखे जो मति लखे...

'मेरी बुद्धि आजकल ऐसी है... वैसी है...'- इसे जाननेवाला बुद्धि से अलग है। बुद्धि बदल जाती है, बुद्धि के निर्णय बदल जाते हैं फिर भी वह तत्त्व, आत्मा, परमेश्वर नहीं बदलता, उसीमें विश्रांति पाओ। आलस्य, निद्रा, तंद्रा न हों, सावधान रहो।

ये जो छः साधन बताये हैं, इन्हें अपनाकर सुख-दुःख, लाभ-हानि में सम रहो। ये आपको कई खतरों से सहज में ही बचा लेंगे। ये परमात्मा को पाने के बड़े ऊँचे, बहुत हितकारी और शीघ्र फल देनेवाले साधन हैं। ये साधन, ये सद्गुण आपकी बुद्धि को परमात्मा में प्रतिष्ठित कर देंगे। सही बात तो यह है कि गुणों की, साधनों की क्या ताकत कि भगवान को वश कर लें, परंतु ये आपकी बुद्धि को भगवान के अनुकूल कर देते हैं।

भगवान तो मौका ढूँढ़ते हैं छलकने के लिए, जैसे माँ मौका ढूँढ़ती है कि 'कब बच्चा ऐसी अठखेली करे कि मैं उसे गले लगा लूँ।' वैसे तो माँ दयालु होती है किंतु बच्चे की कोई विशेष अठखेली उसके हृदय को छलका देती है, ऐसे ही साधक की साधना है प्रभु को छलकाने के लिए।

जहाँ अपनापन होता है वहाँ प्रीति होती है। अतः भगवान को अपना मानो और समता का आश्रय लेकर निरंतर भगवान में चित्तवाले हो जाओ अर्थात् अंतरात्मा में विश्रांति पा लो, बस !

भगवान कहते हैं :

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव ॥

'सब कर्मों को मन से मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योग का अवलम्बन लेकर मेरे परायण और निरंतर मुझमें चित्तवाला हो।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १८.५७)

बुद्धियोग की उपासना का अवलम्बन लेकर प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित करो। जिसकी प्रज्ञा परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है, ऐसे पुरुष के लिए भगवान कहते हैं :

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

'हे अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है (वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है)।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १४.२२)

फिर वह तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण से बचना भी नहीं चाहता और उनमें लिप्त भी नहीं होता, सब व्यवहार करते हुए भी निर्लेप रहता है।

श्राद्ध-महिमा

शास्त्रों में श्राद्ध-विषयक वर्णन आता है कि - अपने कुलोचित धर्म का पालन करनेवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को उचित है कि वे अपने-अपने वर्ण के अनुरूप वेदोक्त विधि से मंत्रोच्चारसहित श्राद्ध का अनुष्ठान करें। जिसका कोई पुत्र न हो, उसका श्राद्ध उसके दौहित्र (पुत्री के पुत्र) कर सकते हैं। कोई भी न हो तो पत्नी ही अपने पति का बिना मंत्रोच्चारण के श्राद्ध कर सकती है।

प्रत्येक मास की अमावस्या व पूर्णिमा को श्राद्ध के योग्य काल बताया गया है। पर जब सूर्य कन्या राशि पर जाता है, तब कृष्णपक्ष में पूर्णिमा से अमावस्या तक श्राद्ध करना चाहिए। विभिन्न तिथियों में श्राद्ध करने के विभिन्न लाभ हैं :

जिनके दिवंगत होने की तिथि याद न हो, उनके श्राद्ध के लिए अमावस्या की तिथि उपयुक्त मानी गयी है। बाकी तो जिनकी जो तिथि हो, श्राद्धपक्ष में उसी तिथि पर बुद्धिमानों को श्राद्ध करना चाहिए।

जो **पूर्णिमा** के दिन श्राद्ध करता है, उसकी बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, पुत्र-पौत्रादि एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

इसी प्रकार **प्रतिपदा** को श्राद्ध करनेवाले को धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

द्वितीया को श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति राजा होता है।

तृतीया शत्रुओं का नाश करनेवाली और पापनाशिनी है।

जो **चतुर्थी** को श्राद्ध करता है उसे शत्रुओं की समस्त कूटचालों का ज्ञान हो जाता है।

पंचमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

जो **षष्ठी** तिथि को श्राद्धकर्म संपन्न करता है उस पर देवता-पितर प्रसन्न रहते हैं।

जो **सप्तमी** को श्राद्ध करता है उसको महान यज्ञों के पुण्यफल प्राप्त होते हैं।

जो **अष्टमी** को श्राद्ध करता है वह सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त करता है।

नवमी को श्राद्ध करनेवाला धन, सम्पत्ति, प्रचुर ऐश्वर्य एवं मन के अनुकूल चलनेवाली स्त्री को प्राप्त करता है।

दशमी को श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलक्ष्मी प्राप्त करता है।

एकादशी का श्राद्ध सर्वश्रेष्ठ दान है। वह समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त कराता है। उससे सम्पूर्ण पापकर्मों का विनाश हो जाता है।

द्वादशी के श्राद्ध से राष्ट्र का कल्याण तथा प्रचुर अन्न की प्राप्ति होती है।

त्रयोदशी के श्राद्ध से धन, संतति, बुद्धि, ऐश्वर्य, दीर्घायु तथा नीरोग काया की प्राप्ति होती है।

चतुर्दशी का श्राद्ध जवान मृतकों के लिए किया जाता है तथा जो हथियारों द्वारा मारे गये हों उनके लिए भी चतुर्दशी को श्राद्ध करना चाहिए।

जिन मनुष्यों के तीन कन्याओं के बाद पुत्र होता है अथवा जुड़वाँ बच्चे पैदा होते हैं उनको **अमावस्या** के दिन श्राद्ध करना चाहिए।

जो देवता और पितरों के श्राद्धकर्म तथा पूजा श्रद्धापूर्वक संपन्न करते हैं, वे स्वर्ग का उपभोग करते हैं।

जो श्राद्धकर्म में गुड़मिश्रित अन्न व तिल देता है, उसका वह संपूर्ण दान अक्षय होता है।

मनुष्य को उचित है कि वह पितरों के प्रति भक्ति रखते हुए सामग्री के अभाव में शाकमात्र के द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले के कुल में कोई दुःख नहीं भोगता।

श्राद्ध के एक दिन पहले ही श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पास निमंत्रण भेजना चाहिए। उसी समय से ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्ता को श्राद्ध-तिथि पूर्ण होने तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए।

श्राद्ध के आरंभ और अंत में तीन बार निम्न मंत्र का जप करें।

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥

पिंडदान करते समय भी एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिए। इससे पितर शीघ्र आ जाते हैं और राक्षस भाग खड़े होते हैं तथा तीनों लोकों के पितर तृप्त होते हैं। यह मंत्र पितरों को तारनेवाला है।

('श्राद्ध' की विस्तृत विधि आश्रम से प्रकाशित 'श्राद्ध-महिमा' पुस्तक में दी गयी है।)
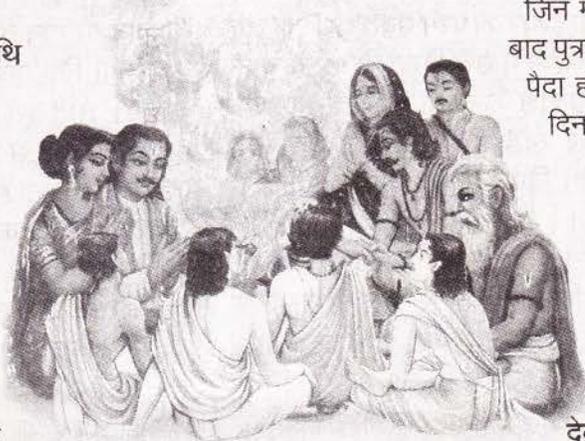
ईमानदारी से आज्ञापालन ही कर्तव्य
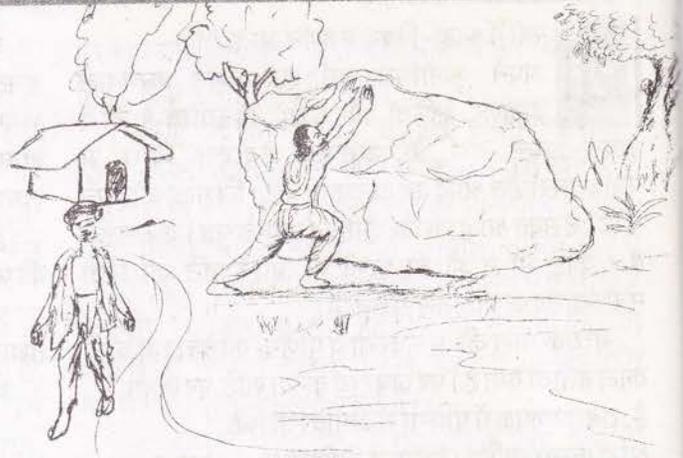
यह एक ऐसे आस्तिक व्यक्ति की कहानी है जो ईश्वर का परम भक्त था। एक रात्रि को स्वप्न में उसे दिखा कि उसके कमरे में अत्यधिक प्रकाश फैल गया है और स्वयं ईश्वर उसके सम्मुख खड़े हैं । उसने उठकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया, फिर दर्शन देने के लिए धन्यवाद दिया । ईश्वर ने उसे अपने आने का प्रयोजन बतलाते हुए कहा : ''मुझे ज्ञात है कि तुम्हारी मेरे प्रति दृढ़ निष्ठा है, अतः मैं तुम्हें एक कार्य सौंप रहा हूँ। तुम जब सुबह अपने घर के बाहर देखोगे तो तुम्हें एक बड़ी-सी चट्टान नजर आयेगी। तुम्हें केवल उस चट्टान को धकेलने का कार्य करना है।'' वह व्यक्ति ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखता था, अतः बिना कुछ 'किंतु... परंतु...' किये उनके आदेश को मान लिया।

ईश्वर हमें जिम्मेदारियाँ सौंपते हैं, हमें तो केवल उनको निभाने के लिए ईमानदारी से परिश्रम ही करना है, उनके सम्पादन का कार्य तो वास्तव में ईश्वर का है।

सुबह जब वह उठा तो देखा कि उसके घर के बाहर वास्तव में एक बड़ी-सी चट्टान पड़ी है। वह अपना पूजा-पाठादि नित्यकर्म निपटाकर बाहर आ गया और ईश्वरीय आज्ञापालन हेतु बाँहें चढ़ाकर उस चट्टान को धकेलने में जुट गया। आते-जाते लोग उसे आश्चर्य से देख रहे थे। सुबह से शाम हो गयी पर चट्टान अपने स्थान से तिलभर भी नहीं सरकी। दूसरे दिन पुनः वह उसी कार्य में लग गया। दिन-पर-दिन बीतने लगे पर चट्टान तो हिल ही नहीं रही थी। सभी लोग उसे समझा रहे थे कि 'चट्टान नहीं खिसकेगी, तुम व्यर्थ प्रयास मत करो।' पर वह व्यक्ति प्रभु के आदेश को मानकर इस कार्य में लगा रहा। इस दौरान उसका शरीर, जो पूर्व में कमजोर था, मजबूत हो गया। भुजाएँ भी बलिष्ठ हो गयीं। पर फिर वह स्वयं निराश होने लगा कि इतने प्रयत्न के बावजूद चट्टान तो रत्तीभर भी नहीं खिसकी है। उसे लगा कि 'अब मुझे यह कार्य बंद कर देना चाहिए।' तभी उसे विचार आया कि 'मैंने यह कार्य ईश्वर के कहने से ही प्रारम्भ किया था और अब जब बंद ही करना है तो क्यों न उन्हींसे पूछ लूँ ?' ईश्वर का चिंतन करते हुए वह रात को सो गया। उसी रात स्वप्न में उसे पुनः ईश्वर के दर्शन हुए। उसने पूछा कि उन्होंने उसे किस काम में लगा दिया है ? चट्टान तो खिसक ही नहीं रही है, फिर इतने लम्बे समय के परिश्रम से उसे क्या मिला ?

इस पर ईश्वर मुस्कराये और बोले कि ''तुम्हें बलिष्ठ शरीर मिला है। पहले तुम शारीरिक रूप से कमजोर थे, पर अब ताकतवर बन चुके हो और जहाँ तक चट्टान को खिसकाने का कार्य है, वह तुम्हारा नहीं मेरा है। तुम्हें तो केवल चट्टान को धकेलने के लिए कहा गया था, जो तुमने ईमानदारी से किया। चट्टान तो मेरे संकल्पमात्र से ही आगे खिसक जायेगी। मुझे तो केवल तुम्हारी परीक्षा लेनी थी कि तुम मेरे भावुक भक्त ही हो या मेरे द्वारा सौंपी हुई जिम्मेदारियों को निभाने के लिए पूर्ण रूप से समर्पित भी हो।''

उसने सुबह उठकर देखा कि सच में चट्टान काफी आगे खिसक गयी है। यह मात्र एक काल्पनिक कहानी ही नहीं है, बल्कि हम सभीके जीवन की ठोस वास्तविकता भी है। ईश्वर हमें भी जिम्मेदारियाँ सौंपते हैं, हमें तो केवल उनको निभाने के लिए ईमानदारी से परिश्रम ही करना है, उनके सम्पादन का कार्य तो वास्तव में ईश्वर का है।

मन का निरीक्षण करें

साधक को चाहिए कि प्राप्त विवेक के द्वारा अपने मन की दशा का भलीभाँति निरीक्षण करे कि उसकी आंतरिक रुचि क्या है, उसमें कौन-कौन-सी आसक्ति (राग) छिपी है ? इस प्रकार मन के अंतःस्थल (गहराई) में रुचि और राग के रूप में छिपे हुए अपने दोषों को देख लेने पर वे अपने-आप नष्ट हो जाते हैं और चित्त शुद्ध हो जाता है, यह प्राकृतिक नियम है। जब तक साधक गुरुजनों और शास्त्रों द्वारा सुनकर अपने दोषों को दोष समझता है, उनको सद्गुणों की भावना से दबाता रहता है, तब तक वे दब तो जाते हैं पर उनका समूल नाश नहीं होता। अतः पुनः मौका पाकर वे घोररूप में भड़क उठते हैं, पर प्रत्यक्ष रूप से देख लेने के बाद दोषों का मूलसहित नाश हो जाता है। यद्यपि साधक बुद्धिजन्य विवेक द्वारा दोषों को दोषरूप में समझता है, उनको छोड़ना भी चाहता है, उसी प्रकार सद्गुणों को भी समझता है तथा उनको धारण करना भी चाहता है, पर जब तक हृदय और विवेक की एकता नहीं हो जाती, मन को उन दोषों में रस आता रहता है और गुणों के रस का अनुभव नहीं होता, तब तक दोषों का त्याग और गुणों का संग्रह नहीं होता। अतः साधक को चाहिए कि वह प्राप्त विवेक के द्वारा गहराई से अपने दोषों का निरीक्षण करके हृदय और विवेक की एकता स्थापित करे अर्थात् मन और बुद्धि में जो दूरी है, उसे मिटाकर मन को बुद्धि में विलीन कर दे। ऐसा होने से दोषों की उत्पत्ति नहीं होगी और गुणों का अभिमान नहीं होगा, तब बुद्धि अपने-आप सम व स्थिर हो जायेगी।

साधक को चाहिए कि वह अपने मन को पुनर्जन्म, नरकादि या अन्य किसी प्रकार का भय दिखाके या लालच देकर उसकी रुचि को दबाये नहीं, अपितु प्राप्त विवेक के द्वारा मन की रुचि का निरीक्षण करता रहे। ऐसा करने से मन की दशा का ज्ञान सहज में ही हो सकेगा और उस रुचि के अनुसार आचरण करने पर भी जब मन के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, तब वह सुगमता से उस रुचि का परिवर्तन स्वीकार कर लेगा। इससे स्वाभाविक ही मन में यह रुचि उत्पन्न होगी कि मुझे ऐसा सुख मिले जो सदा बना रहे, कभी घटे नहीं और जिसमें दुःख का मिश्रण न हो। इस रुचि के अनुसार जब उसे संसार के किसी भी भोग में, किसी भी परिस्थिति-अवस्था में वैसा सुख नहीं मिलेगा, जब वह सब ओर से भटककर थक जायेगा, तब मन की रुचि और बुद्धि के विवेक की एकता हो जायेगी, मन में यह विश्वास हो जायेगा कि भगवान के समान किसी प्रकार भी कोई सुंदर नहीं है। समस्त सुंदरता के केन्द्र वे ही हैं, समस्त जगत की सुंदरता उनके सौंदर्य के किसी एक अंश का प्रतिबिम्बमात्र है ! भगवान के समान प्यार करनेवाला, प्रेम के तत्त्व को जाननेवाला भी दूसरा कोई नहीं है तथा बिना कारण ही दया करनेवाले भी वे ही हैं, उनके जैसा दूसरा कोई है ही नहीं, तब मन अपने-आप उनकी ओर लगेगा।

मन में यह विश्वास हो जाय कि भगवान के समान किसी प्रकार भी कोई सुंदर नहीं है। समस्त सुंदरता के केन्द्र वे ही हैं, समस्त जगत की सुंदरता उनके सौंदर्य के किसी एक अंश का प्रतिबिम्बमात्र है।

वर्तमान काल में जो साधक को ऐसी प्रतीति होती है कि 'क्या किया जाय मन भगवान में लगता नहीं, भगवान की ओर खिंचता नहीं ?' फिर ठीक इससे उलटा हो जायेगा - मन हटाने से भी भगवान से नहीं हटेगा। गोपियों के चरित्र से यह भाव ठीक समझ में आ जाता है। वे एक-दूसरे से क्या कहती हैं, यही न कि ''सखी ! क्या करूँ, जबसे इन आँखों ने उस मोहिनी मूर्ति को देख लिया है, तबसे मेरी आँखें, मेरा मन मेरे नहीं रहे। ये उसे छोड़कर अन्य किसी ओर लगते ही नहीं।''

इस प्रकार हृदय और विवेक की एकता हो जाने पर बुद्धि सम व स्थिर हो जाती है। तब साधक का अहंभाव गलकर प्रेमास्पद के प्रेम की लालसा के रूप में बदल जाता है। उस समय अहंभाव और प्रेम की लालसा के भेद की उपलब्धि नहीं होती, दोनों एक हो जाते हैं एवं प्रेमास्पद व उनके प्रेम की लालसा के सिवा कुछ भी नहीं रहता।

तीन प्रकार का रस होता है :

भगवद् रस
प्रमाद रस
विषय रस
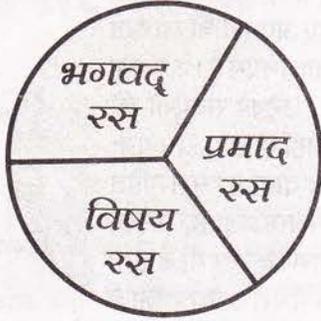
अभ्यासयोग

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

विषय रस और प्रमाद रस नश्वर हैं। अतः भगवद्रस पाने का अभ्यास करें। भले प्रारंभ में इसमें रस न भी आये परंतु फायदा जोरदार है।

तीन प्रकार का रस होता है :

१. प्रमाद रस २. विषय रस ३. भगवद्रस

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अगर तुम भगवद्रस पाने में समर्थ नहीं हो तो फिर अभ्यास करो।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

'मेरे में मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात् मेरे को ही प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १२.८)

जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ से उसे घुमाकर मुझ साक्षी, चैतन्य आत्मा में लगा। फिर तू मुझमें ही निवास करेगा। फिर तू और मैं दो नहीं रहेंगे, एक ही हो जायेंगे। तू और मैं एकस्वरूप हैं – ऐसा तुझे ज्ञान हो जायेगा, बोध हो जायेगा।

जीव वास्तव में ईश्वर से, ब्रह्म से, परमात्म-सुख से अलग नहीं है परंतु प्रमाद-सुख और विषय-सुख की वासना से वह अलग जैसा हो गया है। मान लीजिये कोई राजकुमार लोफरों की संगति करके, भँगेड़ी बनकर भिखमंगा हो गया। अगर वह लोफरों की संगति छोड़ दे तो राजा का खून तो उसकी रगों में है ही। ऐसे ही जीव में परमात्म-चेतना का स्वाभाविक अस्तित्व है परंतु कुसंग के कारण प्रमाद रस, विषय रस में पड़कर वह अपनी महानता भूल जाता है।

जीव का मूल स्वरूप सच्चिदानंद है। वह सत् होने से सदा रहना चाहता है, चित्

होने से जानना चाहता है और आनंदस्वरूप होने से सुखी रहना चाहता है । अपने सच्चिदानंद स्वभाव की प्राप्ति गहरी माँग से ही होती है।

अपने सच्चिदानंद स्वभाव को जानने के लिए ही श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझमें ही मन-बुद्धि को लगा। फिर देखा कि आज के जमाने में सभी लोग मेरे में मन नहीं लगा सकते तो भगवान ने दूसरा विकल्प बताया :

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥

'अगर तू मन को मेरे में अचल भाव से स्थिर करने में समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन ! अभ्यासरूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त करने की इच्छा कर।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : १२.९)

अगर तू मन को मेरे में स्थिर करने में समर्थ नहीं है, मेरे में एकाकार करने में समर्थ नहीं है अर्थात् अर्पण नहीं कर सकता, मिला नहीं सकता तो अभ्यासयोग के द्वारा मेरी प्राप्ति की इच्छा कर।

अभ्यास के तीन स्तर हैं :

विषय रस और प्रमाद रस नश्वर हैं। अतः भगवद्रस पाने का अभ्यास करें। भले प्रारंभ में इसमें रस न भी आये परंतु फायदा जोरदार है। मन लगे - न लगे, अभ्यास करते रहना इसको बोलते हैं साधारण अभ्यास।

मन नहीं लगता फिर भी नौकरी करनी पड़ती है, मन नहीं लगता फिर भी स्कूल जाना पड़ता है। जाते-जाते अभ्यास परिपक्व होता है फिर बच्चे का मन पढ़ने में लगने लगता है और व्यक्ति का अपने काम में।

आरंभ में तो हठ से कोई नियम लेना पड़ता है कि 'इतने प्राणायाम करने हैं, इतनी मालाएँ करनी हैं, इतना समय मौन रखना है, इतने मिनट भगवान के सामने बार-बार प्यारभरी चितवन से देखना है।' पहले पहल उसमें रस नहीं आयेगा, बाद में रस कभी आयेगा - कभी नहीं। फिर भी लगा रहे तो रस आने लगेगा, आनंद आने लगेगा। फिर तो लगेगा कि 'मैं ध्यान करता ही रहूँ, जप करता ही रहूँ...' यह उत्तम प्रकार का अभ्यास है।

जब अभ्यास फलित हो जाता है, मन लगना शुरू हो जाता है तो ऐसे में लगता है कि तृप्ति हो गयी। साधक मानता है कि 'मैंने पा लिया, जान लिया।' फिर ध्यान-भजन शिथिल कर देता है। न खाने योग्य खा लेता है, न करने योग्य कर लेता है तो अभ्यास से सूक्ष्म शरीर में जो दिव्यता आयी थी वह कम होने लगती है।

जैसे ज्यों-ज्यों पानी को गरम करते जाते हैं, त्यों-त्यों उसका तापमान बढ़ता जाता है। ८० डिग्रीवाला ९०-९५ तक पहुँचा, फिर गरम करना छोड़ दिया तो तापमान धीरे-धीरे नीचे आ जाता है परंतु लगे रहें, गरम करते रहें तो १०० डिग्री तक पहुँच जाता है और खौलने लगता है। ऐसे ही साधक अभ्यास में लगा रहे तो परमात्मा का आनंद, परमात्मा का सामर्थ्य, परमात्मा का ज्ञान प्रकट हो जाता है और वह तृप्त हो जाता है।

जिन्हें महापुरुष मिल जाते हैं, उन्हें महापुरुष की तरफ से आत्मानंद की थोड़ी झलक मिल जाती है, फिर उनका मन लगने लगता है। इसमें एक खतरा भी है कि अपनी ओर से १२ साल मेहनत करके जो रस मिलता है वह महापुरुष की कृपा से अनायास मिल जाता है तो उसकी कद्र नहीं करते और उसे खो देते हैं। फिर मन छटपटाता है तो फिर आ जाते हैं उनकी शरण में। थोड़ा पा लिया, फिर खो दिया...

कमाई करके मिले तो कद्र होती है, बिना कमाये मिलता है तो खो देते हैं। जैसे सेठ के बच्चे को बिना मेहनत के पैसे मिलते हैं तो उड़ा देता है और गरीब का बच्चा मेहनत करके कमाता है तो सावधानी से खर्च करता है।

भगवान कहते हैं कि अभ्यास करके तू अपने चित्त को मुझमें लगा। साधक एक बार अपने चित्त को भगवान में लगा दे और फिर अन्य से व्यवहार करता रहे परंतु अपना लक्ष्य स्थिर रखे। जैसे पनिहारी सखियों से बात करती जाती है, रास्ता भी देखती जाती है, दूसरी वस्तुएँ भी देखती जाती है परंतु उसकी मुख्य वृत्ति घड़ों में लगी रहती है। ऐसे ही साधक को अपनी मुख्य वृत्ति अपने आत्म-अभ्यास में लगाये रखनी चाहिए।

प्रमाद रस में सदियों तक पड़े रहे, विषय रस में अभी तक भटकते रहे, अब तो भगवद्रस पाना है। बस, इतना ही तो पक्का करना है!

जीव का मूल स्वरूप सच्चिदानंद है। वह सत् होने से सदा रहना चाहता है, चित् होने से जानना चाहता है और आनंदस्वरूप होने से सुखी रहना चाहता है।
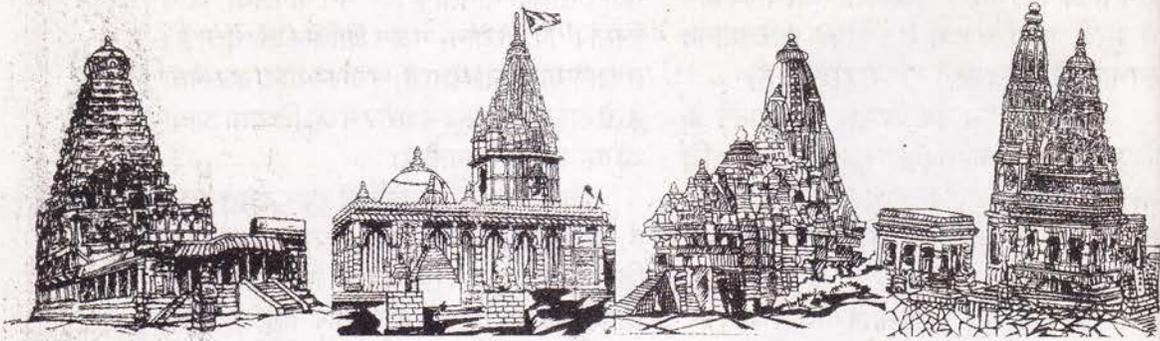
विश्व का प्राचीनतम धर्म : सनातन धर्म

सन् १२८० ईसा पूर्व का एक लेख मिस्र में प्राप्त हुआ है, जो रामेसेम द्वितीय और हिटिटेस के मध्य संधि की शर्तों के विषय में है। इस लेख के अनुसार यह संधि वैदिक देवता 'मैत्रावरुण' की साक्षी में की गयी है। (एच.आर. हाल की 'एन्शिएन्ट हिस्ट्री ऑफ द नियर ईस्ट' पुस्तक का पृष्ठ ३६५ देखें) । इसके अतिरिक्त मिस्र के कालानुक्रम में हमें ऐसे नामों की शृंखला मिलती है, जिनमें आगे 'राम' शब्द जुड़ा होता है। जैसे - रामेसेम प्रथम, रामेसेम द्वितीय, रामेसेम तृतीय इत्यादि।

दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी किनारे से कुछ दूर स्थित मेडागास्कर द्वीप में ७५% स्थानों के नाम संस्कृत भाषा के नामों पर आधारित हैं । इनमें से अधिकतर रामायण के पात्रों के नामों से मिलते-जुलते हैं।

जब भारत में 'विजयादशमी' मनायी जाती है ठीक उसी समय सुदूर मैक्सिको में जो त्यौहार मनाया जाता है, वह 'राम-सीता' के नाम से जाना जाता है। इस देश में की गयी खुदाई में भगवान गणेशजी की बहुत सारी मूर्तियाँ निकली हैं। इस क्षेत्र के प्राचीन निवासियों को 'आस्तिक' कहा जाता था। आज इस समुदाय को 'आजटीस' कहते हैं, जो 'आस्तिक' शब्द का अपभ्रंश है।

कैलिफोर्निया के कई स्थानों के नामों का पौराणिक नामों से साम्य है । कैलिफोर्निया 'कपिल-अरण्य' का बिगड़ा हुआ रूप है। अन्वेषणों से पता चला है कि दक्षिण अमेरिका के पश्चिम में स्थित पेरू देश के निवासी सूर्य-उपासक थे। उनका मुख्य वार्षिक त्यौहार 'संक्रांति' के समय आता था।

बोर्नियो में एक ऐसा जंगल है जिसे पाश्चात्य लोग बहुत समय तक 'वर्जिन फॉरेस्ट' (अक्षत वन) कहते थे - एक ऐसा वन जहाँ कोई व्यक्ति नहीं जा पाया था (वैलेस कृत - 'द मलवे आर्कीपेलागो', पृष्ठ ४४-४५) । अन्वेषकों का एक दल जब उस वन में कुछ सौ मील अंदर गया तो उन्हें एक शिलालेख मिला, जिस पर 'युगों' और 'यज्ञ' के विषय में विस्तृत जानकारी अंकित थी।

स्पेन्सर और गिलेन कृत 'द नेटिव ट्राइब्स ऑफ सेन्ट्रल आस्ट्रेलिया' के पृष्ठ ६२१ पर चित्र १२८ व १२९ में आस्ट्रेलिया के वनवासी कबीले में प्रचलित एक नृत्य को प्रदर्शित किया गया है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि नर्तकों ने अपने मस्तक पर तीसरी आँख बनायी हुई है, जिसे शिवनेत्र कहा जाता है।

उत्तरी अफ्रीका में विशाल 'सहारा' रेगिस्तान है। एक मतानुसार पहले रेगिस्तानों के स्थान पर समुद्र थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 'सहारा' सागर का बिगड़ा हुआ रूप है। कहा जाता है कि जब सहारा सागर के अंदर था तो उसके किनारों पर घनी आबादी थी । उसके किनारे रहनेवालों के नाम संस्कृत में थे (एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग २३, शीर्षक-सहारा)।

ईसा मसीह के ऊपर लगाये गये आरोपों में से एक यह भी था कि उन्होंने ऐसे कुएँ से पानी पीया था, जो निम्न जातियों के लिए था । कुछ अन्य आरोपों के बाद उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया। इससे पता चलता है कि ईसा मसीह के पूर्व से ही वहाँ (येरुशलम में) वर्ण-व्यवस्था मौजूद थी।

यह स्वतःसिद्ध है कि विभिन्न मत, पंथों और मजहबों के पैदा होने से पूर्व समस्त मानव-जाति सनातन धर्म को ही मानती थी। एक समय था जब पूरे विश्व में

वास्तव में धर्म तो केवल एक ही है और वह है 'सनातन धर्म', बाकी तो सब संप्रदाय हैं। इसमें सभीके हित की बातें हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी इसकी बातों का समर्थन किया है। न केवल व्यवहार बल्कि परमार्थ में भी पूर्ण सफलता प्राप्त करने का ज्ञान इसमें निहित है।

वैदिक ज्ञान का आदर होता था। लोग वेदों पर अटूट श्रद्धा रखते थे और उनके उपदेशों का पालन करते थे। मत-पंथ, मजहब अपने संस्थापकों के नाम से जाने जाते हैं और उनका निर्माण हुआ है, परंतु सनातन धर्म तो अनादिकाल से चला आ रहा है। वास्तव में धर्म तो केवल एक ही है और वह है 'सनातन धर्म', बाकी तो सब संप्रदाय हैं। सनातन धर्म को आज हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है।

सनातन संस्कृति सर्वकल्याणकारिणी है। यह समस्त विश्वमानव की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसमें सभीके हित की बातें हैं। यह अध्यात्म की दृढ़ नींव पर अवलम्बित है। वेद, उपनिषद् आदि में इसका स्वरूप प्रकट हुआ है। तत्त्ववेत्ता महापुरुषों ने इसका पोषण-संवर्धन किया है। परमात्म-तत्त्व में जगे हुए महात्माओं ने इसके स्वरूप का विवेचन किया है। आत्मदर्शी ऋषियों ने अपने दीर्घ अनुभवों, तपस्या द्वारा प्राप्त पवित्र ज्ञान और चिंतन द्वारा इसको सींचा है। न केवल व्यवहार बल्कि परमार्थ में भी पूर्ण सफलता प्राप्त करने का ज्ञान इसमें निहित है। आधुनिक विज्ञान ने भी इसकी बातों का समर्थन किया है। आज का समस्याग्रस्त विश्व यदि सनातन धर्म तथा संस्कृति का आश्रय ले तो धरती पर सुख-शांति का साम्राज्य अवश्य स्थापित होगा।

विद्वानों के विचार

✲ इस शताब्दी की समस्या धार्मिक समस्या है। हिन्दू विचार की खोज इस खास समस्या के निदान में अहम् भूमिका निभायेगी।

– अन्द्रे मलराक्स (फ्रांस)

✲ जब मैंने भगवद्गीता पढ़ी और मनन किया कि 'ईश्वर ने कैसे ब्रह्मांड की रचना की', तब मुझे अन्य सभी चीजें फालतू जान पड़ीं।

– अल्बर्ट आइन्स्टाईन

✲ चाहे हम इसे मानें या न मानें परंतु यह सच है कि भारत हम सबकी माता है। उसने हमें सब कुछ दिया है - धर्म, तत्त्वज्ञान, विज्ञान एवं कला। सभी युगों में जो सचमुच में महान, उदात्त और उदार रहे हैं वे सभी भारत में उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान में पूरे विश्व में हिंसा और नफरत का तूफान चल रहा है। भविष्य में इसका प्रकोप और बढ़नेवाला है, जिससे हमारी सभ्यता का ढाँचा चरमरा जायेगा। इसके साथ-साथ अहंकार, क्रूरता तथा झूठ-फरेब बौद्धिक व नैतिक मूल्यों को रौंद रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम एक साथ मिलकर भारत की ओर मुड़ें, जिससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

– लोईस रेवल (फ्रांसीसी लेखक)

✲ भारत शाश्वत है। हालाँकि भारत की अनगिनत सभ्यताओं की शुरुआत समय के इतने पीछे चली गयी कि वे इतिहास के धुँधलके में गुम हो गयीं। भारत को सदा युवा बने रहने का वरदान मिला है। इसकी संस्कृति चिरयुवा है और वर्तमान सदी में यह जितनी प्रासंगिक है, उतनी ही प्रासंगिक यह ईसा मसीह के बीस शताब्दी पूर्व थी।

– नानी अर्देशीर पालखीवाला

✲ मैं हिन्दू नहीं हूँ पर मैं बिना कोई अंत के दंड भोगनेवाले बीभत्स विचार को मन में बैठाने की अपेक्षा भावी दशा के सम्बंध में हिन्दू के सिद्धान्त को अधिक तर्कसंगत, अधिक पवित्र, लोगों को बुराइयों से रोकने में अधिक कारगर मानता हूँ।

– सर विलियम जोन्स

✲ उपनिषदों ने जीवन की हर बुनियादी समस्या का समाधान किया है। उन्होंने हमें वास्तविकता का विस्तृत विवरण प्रदान किया है।

विवेक के वृक्ष पर उपनिषदों से अधिक मनोहर कोई फूल नहीं है और वेदांत दर्शन से सुंदर कोई फल नहीं है।

– पाल दुसेन

सबके प्रिय श्रीराम

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

श्रीरामजी नन्हे थे। एक बार दौड़ते-दौड़ते पीछे से आकर उन्होंने कैकेयी की आँखों पर अपने हाथ रख दिये। कैकेयी समझ गयी कि कौन है। उसने कहा :

''प्यारे-प्यारे, मेरे दिल के दुलारे राम ! मैं तुझे पहचान गयी। अब छोड़...''

''माँ ! ऐसे नहीं छोड़ता, पहले कुछ दे।''

''मेरे लाल ! मेरे राम ! ऐसी कौन-सी चीज है जो मैं तुझे न दूँ ? मेरे पास ऐसा क्या है जो तुझे माँगना पड़ रहा है ? मैं तो तेरी चरणरज पर भी बलिहार जाती हूँ राम ! बोल तुझे क्या चाहिए ? अब आँखें तो छोड़ दे।''

''मैं नहीं छोड़ता।''

''मेरे लाल ! तू कौशल्यानंदन है न ?''

''तू कौशल्यानंदन क्यों बोलती है ? मैं तो कैकेयीनंदन हूँ, माता कैकेयी का पुत्र हूँ।''

''बोल क्या चाहिए तुझे ?''

''माँ ! तुझे वरदान देना पड़ेगा।''

''राम ! तुझे वरदान की क्या जरूरत है ?''

''माँ ! मुझे देवताओं का प्रिय बनाने के लिए तुझे लोगों का अप्रिय होना पड़ेगा।''

''राम ! तुझे जो पसंद है, मैं वह सब कर सकती हूँ।''

''माँ ! तुम सहनशक्ति बढ़ा लेना। देवी सरस्वती और देवता मिलकर तुम्हारी जिह्वा से जो मँगवायें, तुम वह माँग लेना।''

''हाँ, मैं माँग लूँगी। पर राम ! बात क्या है ?''

''मेरा राज्याभिषेक करने की बात चले तो तुम मेरे लिए १४ साल का वनवास माँग लेना माँ !''

''राम ! यह तुम क्या कह रहे हो ?''

''माँ ! मेरा प्रिय करने के लिए तू थोड़ा अप्रिय सह लेना।''

''कोई बात नहीं राम ! मैं ऐसा ही करूँगी।''

भगवत्प्रेम में त्याग होता है, सहिष्णुता होती है। जो प्रभुप्रेम में पीड़ा सह सकता है वही सिद्धि को पाता है। कैकेयी ने सारी पीड़ाएँ सह लीं।

लोग बोलते हैं : 'कैकेयी ऐसी थी, वैसी थी...' कैकेयी को बुरा नहीं समझना चाहिए। कैकेयी का श्रीराम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था तभी तो अपयश सहने तक को तैयार हो गयी और श्रीराम भी बहुत स्नेह करते थे कैकेयी से। इतना स्नेह कि वनवास से आकर श्रीराम कौशल्या से नहीं मिले, सुमित्रा से नहीं मिले, अपितु पहले जाकर कैकेयी के चरणों में गिरे। हालाँकि कैकेयी इतनी बदनाम हुई थी कि उनके पुत्र भरत तक उनसे बात नहीं करते थे ! कैकेयी ने श्रीराम का प्रिय करने के लिए अपकीर्ति भी सह ली।

रावण सोचता है कि 'मैं जान-बूझकर प्रभु के साथ वैर करके उनका चिंतन करते-करते उनके हाथों मरूँगा और तर जाऊँगा।'

'श्रीरामचरितमानस' के अयोध्या कांड में श्रीरामजी कहते हैं :

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।
जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

'माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।' (२६२.४)

मंथरा बुरी थी ? नहीं-नहीं, मंथरा भी बुरी नहीं थी। यह तो ईश्वर की सृष्टि है। लीला के लिए उतार-चढ़ाव होता रहता है।

मंथरा को भी श्रीराम के लिए स्नेह था और अयोध्या को छिन्न-भिन्न करना मंथरा के हृदय में नहीं था। देवताओं ने सरस्वती से मंथरा की बुद्धि को प्रेरित करने के लिए कहा और सरस्वती ने मंथरा की बुद्धि को फिरा दिया।

सृष्टि में कोई बुरा नहीं है। साँप भी अपनी जगह पर काम का है। हर जीव अपनी-अपनी जगह पर अच्छा है, अतः हमारे मन में किसीके लिए नफरत न हो, किसीके प्रति गहरी गाँठ न बाँधें।
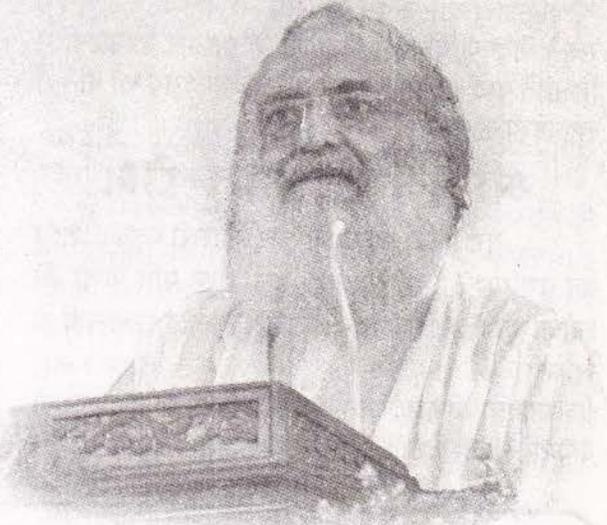
अगर यह नहीं होता तो मारीच-वध, रावण-वध, ऋषि-मुनियों का संग और तितिक्षा व समता का उपदेश... ऐसे दैवी कार्य श्रीरामजी के द्वारा कैसे होते ?

लोग कहते हैं : 'मारीच बड़ा दुष्ट था, धोखा दे दिया श्रीराम को... सीताजी के हरण में मारीच का बड़ा हाथ था।' परंतु 'श्रीरामचरितमानस' में मारीच के लिए आया है :

अंतर प्रेम तासु पहिचाना।
मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥
(अर.कां. : २६.९)

मारीच के हृदय में श्रीरामजी के लिए प्रेम था कि 'चलो, भगवान के दर्शन तो होंगे। इसी बहाने भगवान की लीला में भागीदार हो रहा हूँ।'

'श्रीरामचरितमानस' के अरण्य कांड में आता है कि खर-दूषण के वध के बाद रावण मन-ही-मन कहता है :

सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥

'देवताओं को आनंद देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभु के बाण के आघात से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा। इस तामस शरीर से भजन तो होगा नहीं, अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है।' (२२.२-३)

रावण सोचता है कि 'राक्षस प्रेमाभक्ति नहीं कर सकेंगे। वे द्वेषभक्ति से भी श्रीरामजी का चिंतन करेंगे तो तर जायेंगे। मैं अपने सारे राक्षसों सहित तरूँगा, अकेला क्यों तरूँ ? हमारी तामस देह है, हम भजन तो कर नहीं सकते। रामजी से वैर करके उनका चिंतन करते-करते उनके चरणों तक पहुँच सकते हैं। मैं जान-बूझकर प्रभु के साथ वैर करके उनका चिंतन करते-करते उनके हाथों मरूँगा और तर जाऊँगा।' रामजी से मुँह फेरकर भी अपना कल्याण चाहता है रावण !

बाबा ! फिर हर वर्ष बेचारे रावण को जलाते क्यों हैं ?

उसको हर साल इसलिए जलाते हैं कि समाज में ये संस्कार पड़ें, लोगों को यह प्रेरणा मिले कि इतना बुद्धिमान होने पर भी जो संसार की वस्तुओं को सत्य मानकर अहं को सजाता है, उसका आखिर में यही हाल होता है।

सृष्टि में कोई बुरा नहीं है। साँप भी अपनी जगह पर काम का है। हर जीव अपनी-अपनी जगह पर अच्छा है, अतः हमारे मन में किसीके लिए नफरत न हो, किसीके प्रति गहरी गाँठ न बाँधें।

आप अपने पड़ोसी को, भाई को या प्रतिद्वन्द्वी को अधिक दोष न देना। शत्रु के प्रति भी अति कटु या अति गंदे शब्द न निकालना। शत्रु की गहराई में भी मित्रता का अंश छुपा है। वह कभी-न-कभी मित्र बन जायेगा। मित्र नहीं भी बनता है तो भी परमात्मारूपी पिया उसके दिल की धड़कनें चला रहा है, फिर आप क्यों अपने दिल को शत्रुता से जलाओ ?

सब अच्छा है, सबमें ईश्वरीय अंश है। दोषों से बचें व सबमें सद्‌गुण देखकर सद्‌गुणों के आधार परमात्मा में विश्रांति पायें तो आप अपने वास्तविक वैभव को पाने में सफल हो जायेंगे।

श्रीराम का मातृ-प्रेम

गुरु शिष्य की उपेक्षा कर दें इससे बढ़कर शिष्य का दुर्भाग्य नहीं हो सकता। इसी तरह पति पत्नी की उपेक्षा कर दे इससे बढ़कर उसके लिए कोई सजा नहीं हो सकती।

भगवान श्रीराम के वन-गमन के समय राजा दशरथ ने कैकेयी से कह दिया था कि 'मैं पुत्रसहित तेरा त्याग करता हूँ।'

श्रीरामजी के लंका-विजय के पश्चात् जब दशरथजी स्वर्ग से श्रीरामजी को आशीर्वाद देने के लिए आये, तब उन्होंने रावण के वध पर प्रसन्नता व्यक्त की और कहा :

''राम ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम भाइयों सहित राज्य करो एवं दीर्घायु को प्राप्त हो।''

इस प्रकार जब दशरथजी प्रसन्न हो गये, तब रामजी ने उनसे वरदान माँगा कि ''आपने जो माता कैकेयी से कहा था कि मैं पुत्रसहित तेरा त्याग करता हूँ, अपना वह घोर शाप आप वापस ले लें।''

दशरथजी बोले : ''राम ! तुम धन्य हो।''

सेवा की सुवास

(संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

उड़ीसा में कटक है। एक बार वहाँ प्लेग फैला। मच्छर और गंदगी के कारण लोग बहुत दुःखी थे। उड़िया बाजार में भी प्लेग फैला था। केवल बापूपाड़ा इससे बचा था। बापूपाड़ा में बहुत सारे वकील लोग, समझदार लोग रहते थे। वे घर के आँगन व आस-पास में गंदगी नहीं रहने देते थे। वहाँ के कुछ लड़कों ने सेवा के लिए एक दल बनाया, जिसमें कोई १० साल का था तो कोई ११ का, कोई १५ का तो कोई १८ साल का था। उस दल का मुखिया था एक १२ साल का किशोर।

उड़िया बाजार में हैदरअली नाम का एक शातिर गुंडा रहता था। बापूपाड़ा के लड़के जब उड़िया बाजार में सेवा करने आये तो हैदरअली को लगा कि 'बापूपाड़ा के वकीलों ने मुझे कई बार जेल भिजवाया है। ये लड़के बापूपाड़ा से आये हैं, हरामी हैं... ऐसे हैं... वैसे हैं...' ऐसा सोचकर उसने उनको भगा दिया। परंतु लड़कों का मुखिया वापस नहीं गया। हैदरअली की पत्नी और बेटा भी प्लेग के शिकार हो गये थे। वह लड़का उनकी सेवा में लग गया। जब हैदरअली ने देखा कि लड़का सेवा में लगा है तो उसने पूछा : ''तुमको डर नहीं लगा ?''

''मैं क्यों डरूँ ?''

''मैं हैदरअली हूँ। मैं तो बापूपाड़ावालों को गालियाँ देता हूँ। सेवामंडल के लड़कों को तो मैंने अपना शत्रु समझकर भगा दिया और तुम मेरी पत्नी व बच्चे की सेवा कर रहे हो ? बालक ! हम तुम्हारी इस हिम्मत और उदारता से बड़े प्रभावित हैं। बेटा ! मुझे माफ कर देना, माफ कर देना। मैंने तुम्हारी सेवा की कद्र नहीं की।''

''आप तो हमारे पितातुल्य हैं। माफी देने का अधिकार हमें नहीं है, हमें तो आपसे आशीर्वाद लेना चाहिए।

यदि कोई बीमार है तो हमें उसकी सेवा करनी चाहिए। आपकी पत्नी तो मेरे लिए मातातुल्य है और बेटा भाई के समान।''

हैदरअली उस बच्चे की निष्काम सेवा और मधुर वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि फूट-फूटकर रोया।

''चाचाजान ! आप फिक्र न करें। हमें सेवा का मौका देते रहें।''

आज उस बच्चे का नाम दुनिया जानती है। वह बालक आगे चलकर नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नाम से सुविख्यात हुआ।

आप महान बनना चाहते हैं तो थोड़ी-बहुत सेवा खोज लें। पड़ोस में जो सज्जन हैं, गरीब हैं उनकी सेवा खोज लें। इससे आपकी योग्यता का विकास होगा।

इन्दिरा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : हे मधुसूदन ! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विन के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आश्विन (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार भाद्रपद) के कृष्णपक्ष में 'इन्दिरा' नाम की एकादशी होती है। उसके व्रत के प्रभाव से बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। नीच योनि में पड़े हुए पितरों को भी यह एकादशी सद्गति देनेवाली है।

राजन् ! पूर्वकाल की बात है। सत्ययुग में इन्द्रसेन नाम से विख्यात एक राजकुमार थे, जो माहिष्मतीपुरी के राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उनका यश सब ओर फैल चुका था।

राजा इन्द्रसेन भगवान विष्णु की भक्ति में तत्पर हो गोविंद के मोक्षदायक नामों का जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्व के चिंतन में संलग्न रहते थे। एक दिन वे राजसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतने में देवर्षि नारद आकाश से उतरकर वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आया देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसन पर बिठाया। इसके बाद वे बोले : ''मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरा सर्वथा कुशल है। आज आपके दर्शन से मेरी संपूर्ण यज्ञ-क्रियाएँ सफल हो गयीं। देवर्षे ! अपने आगमन का कारण बताकर मुझ पर कृपा करें।''

नारदजी ने कहा : नृपश्रेष्ठ ! सुनो। मेरी बात तुम्हें आश्चर्य में डालनेवाली है। मैं ब्रह्मलोक से यमलोक में गया था। वहाँ एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा और यमराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की। उस समय यमराज की सभा में मैंने तुम्हारे पिता को भी देखा था। वे व्रतभंग के दोष से वहाँ आये थे। राजन् ! उन्होंने तुमसे कहने के लिए एक संदेश दिया है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है : ''बेटा ! मुझे 'इन्दिरा एकादशी' के व्रत का पुण्य देकर स्वर्ग में भेजो।'' उनका यह संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। राजन् ! अपने पिता को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने के लिए 'इन्दिरा एकादशी' का व्रत करो।

राजा ने पूछा : भगवन् ! कृपा करके 'इन्दिरा एकादशी' के व्रत के विषय में बताइये। किस पक्ष में, किस तिथि को और किस विधि से यह व्रत करना चाहिए ?

नारदजी ने कहा : राजेन्द्र ! सुनो। मैं तुम्हें इस व्रत की शुभकारक विधि बतलाता हूँ। आश्विन मास के कृष्णपक्ष में दशमी के उत्तम दिन श्रद्धायुक्त चित्त से प्रातःकाल स्नान करो। फिर मध्याह्नकाल में स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करो तथा रात्रि में भूमि पर सोओ। निर्मल प्रभात होने पर एकादशी के दिन दातुन करके मुँह धोओ और स्नान करो। इसके बाद भक्तिभाव से निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उपवास का नियम ग्रहण करो :

अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

'कमलनयन भगवान नारायण ! आज मैं सब भोगों से अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करूँगा। अच्युत ! आप मुझे शरण दें।' **(पद्म पुराण, उ. खंड : ६०.२३)**

मध्याह्नकाल में पितरों की प्रसन्नता के लिए शालग्राम-शिला के सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करो तथा दक्षिणा से ब्राह्मणों का सत्कार करके उन्हें भोजन कराओ। पितरों को दिये हुए अन्नमय पिण्ड को सूँघकर गाय को खिला दो। फिर धूप और गंध आदि से भगवान हृषिकेश का पूजन करके रात्रि में उनके समीप जागरण करो। तत्पश्चात् सवेरा होने पर द्वादशी के दिन पुनः भक्तिपूर्वक श्रीहरि की पूजा करो। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराके भाई-बंधु, नाती और पुत्र आदि के साथ स्वयं मौन होकर भोजन करो।

राजन् ! इस विधि से आलस्यरहित होकर यह व्रत करो। इससे तुम्हारे पितर भगवान विष्णु के वैकुण्ठ धाम में चले जायेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! राजा इन्द्रसेन से ऐसा कहकर देवर्षि नारद अंतर्धान हो गये। राजा ने उनकी बतायी हुई विधि से अंतःपुर की रानियों, पुत्रों और भृत्यों सहित उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया।

कुंतीनंदन ! व्रत पूर्ण होने पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। इन्द्रसेन के पिता गरुड़ पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णुधाम को चले गये और इन्द्रसेन भी निष्कंटक राज्य का उपभोग कर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाके स्वयं स्वर्गलोक को चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्दिरा एकादशी' व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया है। इसको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। **('पद्म पुराण' से)**

इन्दिरा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : हे मधुसूदन ! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विन के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आश्विन (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार भाद्रपद) के कृष्णपक्ष में 'इन्दिरा' नाम की एकादशी होती है। उसके व्रत के प्रभाव से बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। नीच योनि में पड़े हुए पितरों को भी यह एकादशी सद्‌गति देनेवाली है।

राजन् ! पूर्वकाल की बात है। सत्ययुग में इन्द्रसेन नाम से विख्यात एक राजकुमार थे, जो माहिष्मतीपुरी के राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उनका यश सब ओर फैल चुका था।

राजा इन्द्रसेन भगवान विष्णु की भक्ति में तत्पर हो गोविंद के मोक्षदायक नामों का जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्व के चिंतन में संलग्न रहते थे। एक दिन वे राजसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतने में देवर्षि नारद आकाश से उतरकर वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आया देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसन पर बिठाया। इसके बाद वे बोले : ''मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरा सर्वथा कुशल है। आज आपके दर्शन से मेरी संपूर्ण यज्ञ-क्रियाएँ सफल हो गयीं। देवर्षे ! अपने आगमन का कारण बताकर मुझ पर कृपा करें।''

नारदजी ने कहा : नृपश्रेष्ठ ! सुनो। मेरी बात तुम्हें आश्चर्य में डालनेवाली है। मैं ब्रह्मलोक से यमलोक में गया था। वहाँ एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा और यमराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की। उस समय यमराज की सभा में मैंने तुम्हारे पिता को भी देखा था। वे व्रतभंग के दोष से वहाँ आये थे। राजन् ! उन्होंने तुमसे कहने के लिए एक संदेश दिया है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है : ''बेटा ! मुझे 'इन्दिरा एकादशी' के व्रत का पुण्य देकर स्वर्ग में भेजो।'' उनका यह संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। राजन् ! अपने पिता को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने के लिए 'इन्दिरा एकादशी' का व्रत करो।

राजा ने पूछा : भगवन् ! कृपा करके 'इन्दिरा एकादशी' के व्रत के विषय में बताइये। किस पक्ष में, किस तिथि को और किस विधि से यह व्रत करना चाहिए ?

नारदजी ने कहा : राजेन्द्र ! सुनो। मैं तुम्हें इस व्रत की शुभकारक विधि बतलाता हूँ। आश्विन मास के कृष्णपक्ष में दशमी के उत्तम दिन श्रद्धायुक्त चित्त से प्रातःकाल स्नान करो। फिर मध्याह्नकाल में स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करो तथा रात्रि में भूमि पर सोओ। निर्मल प्रभात होने पर एकादशी के दिन दातुन करके मुँह धोओ और स्नान करो। इसके बाद भक्तिभाव से निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उपवास का नियम ग्रहण करो :

अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

'कमलनयन भगवान नारायण ! आज मैं सब भोगों से अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करूँगा। अच्युत ! आप मुझे शरण दें।' **(पद्म पुराण, उ. खंड : ६०.२३)**

मध्याह्नकाल में पितरों की प्रसन्नता के लिए शालग्राम-शिला के सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करो तथा दक्षिणा से ब्राह्मणों का सत्कार करके उन्हें भोजन कराओ। पितरों को दिये हुए अन्नमय पिण्ड को सूँघकर गाय को खिला दो। फिर धूप और गंध आदि से भगवान हृषिकेश का पूजन करके रात्रि में उनके समीप जागरण करो। तत्पश्चात् सवेरा होने पर द्वादशी के दिन पुनः भक्तिपूर्वक श्रीहरि की पूजा करो। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराके भाई-बंधु, नाती और पुत्र आदि के साथ स्वयं मौन होकर भोजन करो।

राजन् ! इस विधि से आलस्यरहित होकर यह व्रत करो। इससे तुम्हारे पितर भगवान विष्णु के वैकुण्ठ धाम में चले जायेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! राजा इन्द्रसेन से ऐसा कहकर देवर्षि नारद अंतर्धान हो गये। राजा ने उनकी बतायी हुई विधि से अंतःपुर की रानियों, पुत्रों और भृत्यों सहित उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया।

कुंतीनंदन ! व्रत पूर्ण होने पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। इन्द्रसेन के पिता गरुड़ पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णुधाम को चले गये और इन्द्रसेन भी निष्कंटक राज्य का उपभोग कर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाके स्वयं स्वर्गलोक को चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्दिरा एकादशी' व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया है। इसको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। **('पद्म पुराण' से)**

शरद ऋतु में ध्यान रखने योग्य बातें

शरद ऋतु में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के कारण शरीर में पित्त प्रकुपित हो जाता है। कड़वा रस उत्तम पित्तशामक, आमपाचक, श्रेष्ठ ज्वरनाशक व अग्निदीपक होने से इस ऋतु में कड़वे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। करेला, मेथी, नीम, चिरायता, गिलोय, नागरमोथ आदि उत्तम पित्तशामक, ज्वरनाशक व स्वास्थ्यवर्धक पदार्थ हैं परंतु अरुचिकर होने के कारण इनका सेवन नहींवत् किया जाता है। इससे मधुमेह, कृमिरोग, त्वचाविकार, मोटापा जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन व्याधियों में उपरोक्त कड़वे पदार्थ ही औषधिरूप हैं।

बच्चों को विडंग, इंद्रजव आदि कड़वे पदार्थों से युक्त जन्मघुट्टी पिलाने से उनकी कफ, कृमि, ज्वर, दस्त आदि कई रोगों से रक्षा हो जाती है। बालकों को बचपन से ही कड़वे पदार्थ खाने की आदत डालें।

कड़वा रस स्वयं अरुचिकर होते हुए भी भोजन में रुचि उत्पन्न करता है। यह मुँह की शुद्धि तो करता ही है, साथ ही रक्त, मांस व त्वचा की भी शुद्धि करता है, यकृत (लीवर) की कार्यक्षमता तथा भूख बढ़ाता है। जिससे आम तथा हानिकारक द्रव्यों के निष्कासन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। रस व रक्त की शुद्धि से ज्वर, पांडु, पीलिया, रक्तपित्त, शीतपित्त तथा विविध त्वचा-विकारों से रक्षा होती है।

कड़वे पदार्थों में चिरायता सर्वश्रेष्ठ ज्वरनाशक औषधि है। बुखार में चिरायता का काढ़ा पिलाना चाहिए। ताजा चिरायता न मिलने पर इससे बने सुदर्शन चूर्ण का उपयोग कर सकते हैं।

इन दिनों में तुलसी के ५-७ पत्तों के साथ नीम के ५-१० पत्ते भी चबाकर खायें व नीम की दातुन करें। एकाध करेला भी चबाकर खाना चाहिए। ताजी गिलोय मिल जाय तो उसका १-२ चम्मच ताजा रस ले लें या उससे बने रसायन चूर्ण का दूध या घी के साथ सेवन करें।

हफ्ते में एकाध बार हरी या सूखी मेथी, करेला, ताजी हल्दी, आमी हल्दी आदि कड़वे पदार्थों का सेवन जरूर करें।

सावधानियाँ : शरद ऋतु में मेथीदाना, कार्तिक में करेला, भादों में दही व लौकी तथा आश्विन में दूध वर्जित है। इस ऋतु में भरपेट भोजन, दिन की निद्रा, बर्फ व तले हुए पदार्थों का सेवन भी वर्जित है।

विशेष : श्राद्ध के दिनों में १५ दिन तक घी, दूध, साठी के चावल, चावल की खीर का सेवन पित्तशामक है। परवल, मूँग, पका पीला पेठा आदि का सेवन हितकर है।

शरद पूर्णिमा की शीतल रात्रि में छत पर चन्द्रमा की किरणों में रखी हुई दूध-पोहे अथवा दूध-चावल की खीर सर्वप्रिय, पित्तशामक, शीतल एवं सात्त्विक आहार है। इस रात्रि में ध्यान, भजन, सत्संग, कीर्तन, चन्द्रदर्शन आदि शारीरिक व मानसिक आरोग्यता के लिए अत्यंत लाभदायक हैं।

शरद ऋतुजन्य विकारों से रक्षा हेतु प्राणायाम व अन्य उपाय

मुँह खोलकर होंठों को अंग्रेजी वर्ण 'ओ' (O) के आकार में लायें, जिह्वा को होंठों से बाहर निकालकर लम्बाई में मोड़ दें और उसमें से हवा के घूँट भर लें। श्वास को ५-१० सेकंड रोककर फिर दोनों नथुनों से धीरे-धीरे छोड़ दें। इसे 'शीतली प्राणायाम' कहते हैं। आँखें बंद करके दाँतों की पंक्तियों को एक-दूसरे पर रखें। जिह्वा को मुँह के भीतर पीछे की ओर इस प्रकार से मोड़ें कि उसके अग्रभाग का स्पर्श तालु से हो। होंठों को खोलकर अधिक-से-अधिक फैलायें। अब मुँह के द्वारा 'सी' जैसा शब्दोच्चार करते हुए गहरा श्वास लें, रोकें, फिर दोनों नथुनों से धीरे-धीरे छोड़ दें। इसे 'शीतकारी प्राणायाम' कहते हैं। बायें नथुने से श्वास लें, कुछ समय अंदर ही रोके रखें, फिर दायें नथुने से छोड़ें। इसे 'चंद्रभेदी प्राणायाम' कहते हैं। उपरोक्त में से कोई भी प्राणायाम ५-७ बार करें। इससे गर्मी का प्रकोप कम हो जायेगा व पित्त-शमन होगा।

नकसीर फूटती हो तो सिर पर पानी की धारा डालें। आँखें जलती हों तो एक कटोरी में पानी लेकर उसमें आँखें डुबोयें व २-४ मिनट तक पलकें झपकायें। मुलतानी मिट्टी या आँवले के उबटन से स्नान गर्मीशामक है।

मुलतानी मिट्टी या उसमें नींबू, बेसन, दही अथवा छाछ आदि मिलाकर शरीर पर थोड़ी देर लगाये रखें तो गर्मी व पित्तदोष से होनेवाली तमाम बीमारियों को यह घोल चूस लेता है। यह घोल थोड़ा समय पहले बनाकर रखना चाहिए।

ये कैसा है जादू !

मई १९९४ में मुझे किडनी में तकलीफ हो गयी थी। डॉक्टरों ने बताया कि 'आपकी एक किडनी जन्म से ही खराब है और दूसरी भी २२ साल तक अकेले ही काम करने के कारण खराब हो चुकी है। दोनों किडनियों में हाइड्रोनेफ्रोसिस (Hydronephrosis) की बीमारी है और पथरी (Stone) भी है। आपको ऑपरेशन कराना पड़ेगा।' उन्हीं दिनों में पूज्य गुरुदेव का मुंबई में सत्संग आयोजित हुआ। मैंने पूज्य बापूजी से दीक्षा ले ली। दीक्षा के दिन ही पूज्य गुरुदेव ने मुझ पर कृपा बरसाते हुए पूछा कि ''तुझे क्या हुआ है ?'' मैंने रोते-रोते अपनी किडनी की तकलीफ की बात बतायी और कहा कि ''इस तरह का रोग ठीक होना मुश्किल है - ऐसा डॉक्टर कहते हैं।''

पूज्य गुरुदेव ने अपनी नूरानी नजर से कृपा बरसाते हुए मुझे मंत्र दिया और कहा कि ''तुझे कुछ नहीं होगा।'' इस बात को आज ग्यारह साल से भी अधिक समय हो गया है। अभी मैंने दिनांक २०-७-०५ को के.ई.एम. हॉस्पिटल (परेल, मुंबई) से किडनी के सब टेस्ट करवाये तो मुझे बताया गया कि दोनों किडनियों में आज भी खराबी है, फिर भी दोनों १००% काम कर रही हैं। इस अवस्था में कभी-कभी रोगी को डायलिसिस पर जाना पड़ता है परंतु आज तक मुझे कभी सिरदर्द या बुखार ने भी नहीं सताया। मैं गुरुदेव की कृपा से बिल्कुल स्वस्थ जीवन जी रही हूँ। यह विज्ञान-जगत के लिए अत्यंत आश्चर्य की बात है।

- श्रीमती मंजुला हरेश भानुशाली
सी-२०३, साईधाम सोसायटी, मुलुंड (प.), मुंबई (महा.)। फोन : २५६८८९२९.

गर्मी व पित्त शामक : गुलकंद

शरद ऋतु में उत्पन्न होनेवाले पित्तदोष, दाह, जलन आदि विकारों का सामना करने हेतु पहले से ही शरीर को ठंडक पहुँचानेवाले पित्तशामक पदार्थों का सेवन शुरू करना हितकारी है। ऐसे पदार्थों में प्रमुख है 'गुलकंद'।

आश्रम में प्रवालपिष्टी, जावित्री, सौंफ और इलायची से युक्त गुलकंद बनाया गया है, जो बाजारू गुलकंद से अधिक गुणकारी व प्रभावकारी है।

लाभ : प्रवाल आदि सामग्री से युक्त गुलकंद में गुलकंद के गुणों के साथ-साथ इन पदार्थों के लाभकारी गुणधर्मों का भी पूर्णरूप से समावेश रहता है। इससे यह पित्तदोष, रक्तपित्त, रक्तचाप, कब्ज, प्यास की अधिकता, आंतरिक गर्मी बढ़ना, जलन आदि विकारों को नष्ट करता है और मस्तिष्क को ठंडक पहुँचाता है।

इसका सेवन स्त्रियों के गर्भाशय की गर्मी का शमन करता है और मासिक धर्म में अधिक रक्त जाना (अत्यार्तव) आदि गर्भाशय से सम्बंधित दोषों को भी नष्ट करता है। हाथ-पैर और तलवों में जलन रहना, आँखों में जलन होना, गर्मी के प्रभाव से आँखें लाल हो जाना, गर्मी के कारण त्वचा का रंग काला पड़ जाना, शरीर में छोटी-छोटी दानेदार फुंसियाँ होना, पसीना अधिक आना, आँखों से गर्म पानी निकलना, पेशाब गर्म, लाल और जलन के साथ होना, खाज-खुजली होना आदि विकारों में इसका सेवन अत्यंत लाभकारी है।

पूज्य बापूजी के एकांत आश्रमों में गुलाब के बगीचे हैं। उनसे विधिवत् गुलकंद बनाया जाता है। गुलाब के फूलों को अच्छी तरह धोकर उनकी पँखुड़ियाँ निकाल ली जाती हैं, फिर उनमें उचित मात्रा में चीनी मिलायी जाती है। इस मिश्रण को बर्तन में डालकर ऊपर से कपड़ा बाँधकर ६० दिनों तक सूर्य की धूप व चन्द्रमा की चाँदनी में रखकर पुष्ट किया जाता है। फिर उसमें प्रवालपिष्टी, जावित्री और इलायची मिलायी जाती है, जो कि क्रमशः चार हजार रुपये, एक हजार रुपये और सात सौ रुपये प्रति किलो मिलती है।

आप अपने घर में उपर्युक्त विधि से गुलकंद बनायें या आश्रम में बने गुलकंद का लाभ लें। इसे कभी भी दूध के साथ या अकेला भी खा सकते हैं।

प्राप्ति-स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम व आश्रम की सेवा समितियाँ।

मानवता के लिए

अमानगंज के बाढ़पीड़ितों को सहायता

दैनिक भास्कर सतना, ६ अगस्त । नगर संवाददाता : संतों का हृदय बहुत कोमल व दयालु होता है। अपने ज्ञान, तप और त्याग से शिष्यों का सदा कल्याण करनेवाले संतों ने आपदा या विपत्तियों के समय जब, जहाँ, जैसी आवश्यकता पड़ी, पीड़ितों की बढ़-चढ़कर मदद की है।

जुलाई माह की भीषण बाढ़ व लगातार कई दिनों तक हुई मूसलधार बारिश से अपना सब कुछ खो चुके अमानगंजवासियों की शिष्यों व मीडिया के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के तुरत बाद एक दल अमानगंज भेजकर राहत व पुनर्वास-कार्य को अंजाम देते रहे महान संत श्री आसारामजी बापू के परोपकारी व कल्याणकारी कार्य पूरे समाज के लिए आदर्श बने। अमानगंजवासियों की इस विपदा के बारे में अमानगंज समिति के साधकों ने गुरुपूर्णिमा के अवसर पर जब संत श्री आसारामजी बापू को अवगत कराया तो उनका दयालु हृदय पसीज उठा। उन्होंने बाढ़पीड़ितों की तुरंत सहायता हेतु अपने अमदावाद आश्रम से एक दल गठित कर अमानगंज रवाना किया और तत्काल सहायता-कार्य चालू कर दिये। जिसमें कपड़े, अनाज, बर्तन, दवाइयाँ, कम्बल, चादरें इत्यादि आवश्यक सामग्री भरपूर मात्रा में बाँटी गयी। विगत १० दिनों से यह सहायता शिविर चल रहा है। वहाँ के लोगों के लिए आम भंडारे का भी आयोजन किया गया।

इसके अलावा वहाँ के सम्पन्न नागरिकों का भी दिल संत श्री आसारामजी बापू के परोपकारी आदर्शों से पसीज उठा। वे भी बाढ़पीड़ितों की खुलकर मदद कर रहे हैं।

संत श्री आसारामजी बापू के प्रति कृतज्ञ हैं अमानगंजवासी

दैनिक भास्कर पन्ना, ११ अगस्त। संत श्री आसारामजी बापू के शिष्य श्री वासुदेवानंदजी की अगुआई में अमानगंज अंचल के बाढ़पीड़ितों को १८ दिनों से राहत-सामग्री के रूप में खाद्यान्न, वस्त्र, बर्तन तथा बरसाती का वितरण किया जा रहा है।

स्थानीय जनता ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा कि संतश्री द्वारा जो सहायता अमानगंज के बाढ़पीड़ितों को उपलब्ध करायी जा रही है, उसके लिए अमानगंज अंचल के वासी उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

खुला संत का खजाना

बाढ़पीड़ित लोगों की करुण गाथा से भावविभोर हो उठे आसारामजी बापू

यंगलीडर

कटनी, ९ अगस्त । परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू ने बाढ़ से पीड़ित अमानगंज क्षेत्र के नागरिकों की करुण गाथा सुनकर मुक्तहस्त से वहाँ राहत-सामग्री पहुँचाने एवं उसका वितरण करने का कार्य सुचारु ढंग से प्रारंभ करवा दिया है । पूज्य बापूजी ने निर्धन वर्ग के लिए मकान बनाने हेतु सर्वे करने के लिए अमदावाद से एक दल भेजा, जो अमानगंज पहुँच गया है।

अमानगंज एवं अन्य समीपस्थ क्षेत्रों में राहत-सामग्री पहुँचाये जाने की खबर जंगल की आग की तरह फैल गयी, जिससे हजारों बाढ़पीड़ित लोग अपनी व्यथा सुनाने पूज्य बापूजी के राहत शिविरों की ओर आ रहे हैं । हजारों-लाखों किलो गेहूँ, आटा, चावल, दाल आदि खाद्यान्न तथा महिलाओं हेतु साड़ी, पेटीकोट, ब्लाउज एवं पुरुष वर्ग हेतु धोती, बनियान आदि सामग्री वहाँ पहुँचायी गयी है । प्रत्येक बाढ़पीड़ित को बीस किलो खाद्यान्न एवं पाँच-पाँच बर्तन, जिसमें परात, थाली, लोटा, गिलास, कटोरी आदि वितरित किये जाने का कार्य कई दिनों से जारी है।

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा अमानगंज अंचल में बँटी राहत-सामग्री

दैनिक भास्कर

सतना, ११ अगस्त।

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा बिना जातीय भेदभाव के सभी लोगों को हर संभव सहायता उपलब्ध करायी गयी, जिसे अमानगंज अंचल की जनता ने बापूजी का आशीर्वाद माना व अपने-आपको कृतज्ञ समझा।

अमानगंज नगर अंतर्गत सभी पन्द्रह वार्डों में पूज्य बापूजी के साधकों द्वारा सर्वे उपरान्त प्रत्येक परिवार को कूपन-विधि द्वारा अनाज, बर्तन, कपड़े इत्यादि सामग्री का वितरण किया गया । वहीं शासकीय कन्या हाईस्कूल में संतश्री के साधकों द्वारा लगातार पन्द्रह दिनों से दिन-रात भोजन तैयार कर पैकेटों के रूप में गाँव-गाँव व नगर-नगर में घर-घर पहुँचाया जा रहा है।
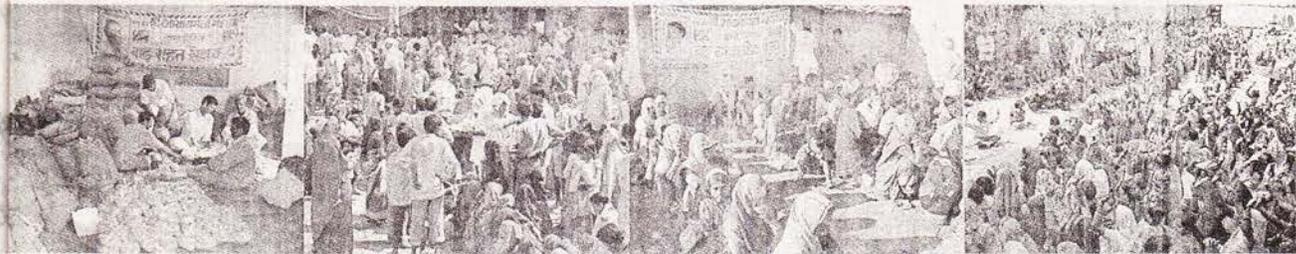
आदर तथा अनादर, वचन बुरे त्यों भले

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

सीकर (राज.), ९ से १० अगस्त (दोपहर तक) : यहाँ पूज्य बापूजी का प्रथम पदार्पण हुआ। पूज्यश्री की भक्ति-ज्ञान की गंगा में पूरा इलाका उमड़ पड़ा। जैसे ही पूज्यश्री ने पंडाल में प्रवेश किया, उनके दर्शन के लिए लालायित भक्तों का मनमयूर नृत्य करने लगा, उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की धाराएँ बह चलीं।

पूज्य बापूजी ने भक्त-हृदयों के प्रतीक्षा के भाव पहचानकर चुटकी लेते हुए भक्तों से ही पूछा : ''आप लोग इतने दिन कहाँ थे ?'' इस पर भक्तों ने गद्गद हो अपने दोनों हाथ जोड़कर पूज्यश्री का अभिवादन किया।

भारत के कोने-कोने को जागृत कर रहे पूज्यश्री ने वचनामृत का प्रसाद बाँटते हुए कहा : ''आत्मा व परमात्मा की जात एक है और शरीर व संसार की जात एक है। परमात्मा की तरह आत्मा अमर है और संसार की तरह शरीर नश्वर है।''

हमारी चिंता की व्यर्थता साबित करते हुए उन्होंने प्रश्न किया : ''पक्षियों को उड़ना व मछलियों को तैरना किसने सिखाया ? फूल-पत्तियों में रंग तथा माँ की छाती में स्नेहयुक्त दूध आखिर किसने भरा ? यह सब उस परम शक्ति की ही सृष्टि है। जब वह हमारी चिंता कर रही है तो हमें चिंता करने की क्या आवश्यकता है ? हम चिंतन करें, चिंता क्यों करें ?'' **चिंता से चतुराई घटे... चिंता बड़ी अभागिनी, चिंता चिता समान।**

झुंझुनू (राज.), १० अगस्त (दोपहर) से ११ अगस्त : जीवन को स्वस्थ, सुखी व सम्मानित बनाने की कला बतानेवाले पूज्य बापूजी को सुनने-दर्शन करने यहाँ के 'मोतीलाल कॉलेज स्टेडियम' पर लोगों का दरिया उमड़ पड़ा। इतनी भीड़ के बावजूद श्रद्धालुओं का अनुशासन देखने योग्य था। बापूजी के मंच पर पहुँचते ही उनके आभामंडल से अभिभूत श्रद्धालु उनके साथ **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का उच्चारण करते हुए भगवदीय ध्यान-रस में रसमय होने लगे। क्यों न होंगे, रस बरसानेवाले अपने प्यारे साँईं जो मिल गये ! यहाँ के श्रद्धालुओं की तितिक्षा व श्रद्धाभाव देखकर पूज्यश्री भी अभिभूत हुए। उन्होंने भक्तों को रात्रि को सोते समय श्वासोच्छ्वास के साथ भगवन्नाम-जप करते हुए योगनिद्रा का लाभ लेने की कुंजी बतायी। यहाँ खास बात यह थी कि मंडप में बैठे श्रद्धालुओं में मुस्लिम भक्तों की भी बड़ी संख्या थी। इन भक्तों ने बापूजी में अल्लाही नूर की झलक देखी एवं पूरी तन्मयता से सत्संग सुना, कीर्तन किया व प्राणायाम का भी लाभ लिया।

चरखी-दादरी (जि. भिवानी, हरि.), ११ अगस्त : अनजान प्रचारकों ने बापूजी के आगमन से २-३ घंटे पहले का समय घोषित किया परंतु भक्त तो उससे भी पहले आये। ६-६ घंटे इंतजार के बाद अपने प्यारे बापूजी के दर्शन पाकर यहाँ उमड़ी भीड़ में जो आनंद, हर्षोल्लास का संचार हुआ, वह तो चरखी-दादरी व आस-पास का इलाका ही जाने। पिछले ४०-५० वर्षों में यहाँ ऐसा देखने को नहीं मिला। बापूजी का आगमन एवं १ घंटे का सत्संग इस क्षेत्र में एक ऐतिहासिक छाप छोड़ गया। आस-पास का संपूर्ण इलाका उमड़ा दादरी में... दादरी में हुए दीदार, हो रहे थे बेकरार!

बापूजी ने यहाँ के भक्तों को अपने जीवन के कई अनुभव बताये तथा भगवद्भक्ति, भगवत्सुख की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी।

रेवाड़ी (हरि.), १२ अगस्त (शाम) से १४ अगस्त : ११ अगस्त की रात्रि को रेवाड़ी स्थित आश्रम में पूज्यश्री का आगमन हुआ। यहाँ की त्रिदिवसीय ज्ञानगंगा में भक्तों ने हरिरस का छककर पान किया। ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी की अमृतवाणी में नित्य नवीन ब्रह्मरस, नित्य नवीन ज्ञान, नित्य नवीन कुंजियाँ मिलती हैं, फिर इस सत्संग के अनमोल अवसर का लाभ कौन नहीं उठाना चाहेगा ? रेवाड़ी समिति-अध्यक्ष व उनके सहयोगियों की सेवा-श्रद्धा सराहनीय थी, अन्य समितिवाले उनसे सीखें।

पूज्य बापूजी ने यहाँ सभी धर्मों में भगवन्नाम की महत्ता व उपासना पर सुंदर ढंग से प्रकाश डाला : ''चीन में भगवान का नाम है 'ताओ' - जो ताने (विकास करे) और सब ओर सघन रूप से व्याप रहा हो। कितना सुंदर नाम ! इस्लाम ने प्यारे प्रभु के अल्ला, रहमान, रहीम आदि ९९ नाम खोजे, उनकी माला में दाने भी ९९ ही होते हैं।

पारसियों ने भगवान के २४ नाम खोजे। भारतीय संस्कृति ने तो भैया हद कर दी ! भगवान के १०००-१००० नाम खोजे जैसे - 'विष्णुसहस्रनाम'। फिर कहते हैं **हरि अनंत, हरिकथा अनंता।** भगवान अनंत हैं वैसे ही उनके नाम भी अनंत हैं। उनका पूरा वर्णन नहीं कर सकते। वह

निंदा-स्तुति जगत की, धर जूते के तले ॥

परमात्मा एक, उसके गुण, लीला, प्रभाव एवं नाम अनेक। किसी अनुभवी महापुरुष के सान्निध्य में उसके नामों, गुणों का गुणगान करते हुए उसी एक में अंतर्मुख हो जाओ।

संध्या के समय ब्राह्मण लोग भगवान के २४ नामों का उच्चारण करते हैं। आप भगवान के २ नाम, १० नाम - जितने भी नामों का अर्थसहित उच्चारण कर सकते हो, करो और अपना दिल दिलबर के आनंद से भरो। पहुँचो किसी प्रभु में विश्रांति पाये हुए संत-फकीर के पास। वह अनंतनामी फिर भी अनामी कैसे तुम्हारा आत्मा होकर बैठा है, यह जान लो व पा लो परम सुख, परम शांति, परम आनंद ! सिख धर्म ने उस प्यारे का नाम खोजा 'सत् श्री अकाल'। 'सत्' यानी तीनों कालों में रहनेवाला, 'श्री' यानी सुव्यवस्था रखनेवाला, 'अकाल' यानी समय के प्रभाव से अछूता वह आत्मा-परब्रह्म।''

गुड़गाँव (हरि.), १५ से १८ अगस्त (दोपहर तक) : यहाँ हुए पूज्यश्री के कार्यक्रम में विद्यार्थी विशेष सत्र व पूर्णिमा-दर्शन महोत्सव भी संपन्न हुआ। १५ अगस्त को पूज्यश्री ने स्वतंत्रता संग्राम में 'श्रीमद्भगवद्गीता' के योगदान पर जोर देते हुए कहा : ''स्वतंत्रता सेनानियों, क्रांतिकारियों ने गीता का संदेश आत्मसात् कर रखा था, जिससे उनमें निर्भयता व आत्मा की अमरता के संस्कार दृढ़ हुए थे। इससे वे शोषक, क्रूर अंग्रेजों से लोहा लेने में सफल हुए। गाँधीजी सामूहिक रूप से रामनाम का जप, प्रार्थना तथा 'रघुपति राघव राजाराम' कीर्तन करवाते थे।

अब भी देश को गीता के ज्ञान एवं भगवन्नाम-कीर्तन की अत्यंत आवश्यकता है। भगवन्नाम-कीर्तन भारत की गली-गली में गुँजाओ और बाह्य आजादी को सुरक्षित रखते हुए आत्मिक, आंतरिक आजादी लाओ।''

१८ अगस्त को उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों से आये पूर्णिमा व्रतधारियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा : ''उत्तम कार्य, उत्तम समय व उत्तम व्यक्ति का इंतजार न करो। वर्तमान समय ही उत्तम समय है। वर्तमान में जो कार्य तुम्हारे हाथ में है वही उत्तम कार्य है व जो व्यक्ति अभी तुम्हारे सामने है, उसकी गहराई में छुपे हुए परम उत्तम को निहारते हुए व्यवहार करो।

ऐसे कार्य करो जिससे तुम्हारा अंतर्यामी तुम्हारा ओज, बल एवं प्रसन्नता बढ़ाये व तुम्हारे हृदय में भगवत्प्रसाद का प्राकट्य हो जाय।''

पूर्णिमा व्रतधारियों को पूज्यश्री ने व्यवहार व अध्यात्म में सफलता-प्राप्ति एवं प्रभुमय जीवन जीने की विभिन्न कुंजियाँ बतायीं। पूज्यश्री ने यहाँ बीजमंत्रों के लाभों को बताकर उनका फायदा उठाने के लिए कहा। उन्होंने बारिश लाने का मंत्र व गृहकलह-नाश का अद्‌भुत प्रयोग भी बताया।

साधकों को जीवन में समता लाने का संदेश देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

आदर तथा अनादर, वचन बुरे त्यों भले।
निंदा-स्तुति जगत की, धर जूते के तले ॥

गोधरा (गुज.), १९ से २१ अगस्त (दोपहर तक) : १९ अगस्त को यहाँ 'रक्षाबंधन व नारियली पूर्णिमा महोत्सव' मनाया गया। पूर्णिमा व्रतधारियों ने पूज्यश्री की नित्य नूतन सत्संग-अमृतधारा का लाभ लिया व पूज्यश्री के दर्शन कर व्रत खोला।

पूज्य बापूजी ने यहाँ जीवन को उन्नत बनानेवाले १० व्रत बताये, जिनमें ३ दैहिक, ३ मानस व ४ वाचिक व्रत थे। इन व्रतों को जीवन में उतारकर आप परमात्मप्राप्ति के रास्ते शीघ्र उन्नति कर सकेंगे। पूज्य बापूजी के रक्षाबंधन महोत्सव की वी.सी.डी. व कैसेट सभीके लिए देखने-सुनने योग्य व संग्रहणीय है।

धानपुर, जि. दाहोद (गुज.), २२ अगस्त तथा दाहोद (गुज.), २३ अगस्त : गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीनेवाले हजारों-हजारों परिवारों को हर माह संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से राशन कार्ड द्वारा निःशुल्क अनाज मिलता है। धानपुर एवं दाहोद में सत्संग व भंडारे का कार्यक्रम हुआ। सादा-सूदा जीवन जीनेवाले गरीब-गुरबों ने अन्न, वस्त्र, तेल, बर्तन, मिठाई, दक्षिणा आदि तो पाया परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि राशन कार्डवाले गरीब-गुरबे व इतर भक्त - सभी समझ सकें ऐसी सहज-सुलभ भाषा में सत्संग, साधन व आदिवासियों की भक्ति-परंपरा का इतिहास सुन-समझकर सब दंग-से रह गये।

बापूजी ने हिदायत देते हुए कहा : ''नाभि से नीचे चाँदी के आभूषण पहनना स्वास्थ्य के लिए हितकर है तथा नाभि

से ऊपर पहनना अहितकर है। महिलाएँ पैरों में चाँदी का कड़ा, पायल आदि पहनें, यह उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकारी है। पुरुष हाथों में चाँदी का कड़ा, अँगूठी आदि न पहनें, इससे मानसिक दुर्बलता पैदा होती है व शारीरिक स्वास्थ्य की हानि होती है।

धूप में नंगे सिर घूमने से यादशक्ति घटती है तथा बुढ़ापा जल्दी आता है। अतः बच्चों को स्कूल जाते समय तथा बड़ों को काम-धंधे के लिए जाते समय सिर ढकने का आग्रह रखना चाहिए।''

पूज्य बापूजी ने इस प्रकार की कई छोटी-मोटी उपयोगी बातें बतायीं तथा शराब आदि व्यसनों से मुक्त होने के उपाय भी बताये।

धानपुर इलाके के आदिवासी लोगों में गजब की शांति, धैर्य तथा उतनी ही सच्चाई भी देखने को मिली। भीड़ में पैसे बँटे, तब पूज्य बापूजी ने कहा : ''जिनको पैसे न मिले हों वे हाथ ऊपर करें।''

जिनको पैसे बाँटने में सेवक चूक गये थे, ऐसे २-३ हाथ ही ऊपर हुए। यहाँ के लोग धन से भले गरीब हों परंतु दिल के गरीब नहीं हैं, मन के बेईमान नहीं हैं। भारत की गरीब जनता में कितनी सहनशक्ति है, ईमानदारी है! हे भारतीय संस्कृति! धन्य है तू व तेरे भोले-भाले एवं संयमी सपूत! सपूत बोलने से महिलाएँ भी आ जाती हैं, संकोच न करना।

जन्माष्टमी (सूरत, गुज.), २६ से २८ अगस्त : इस वर्ष पूज्यश्री के सान्निध्य में आयोजित जन्माष्टमी महोत्सव हर वर्ष की तुलना में कुछ अनोखा रहा। मटकीफोड़ के समय कलात्मक ढंग से सजी-धजी ३०० मटकियाँ पूरे पंडाल में लटक रही थीं और लटका-मटका करता कन्हैया उड़न-खटोले में बैठा था। बापूजी रिमोट कंट्रोल द्वारा उसके करकमलों से मटकियाँ फुड़वा रहे थे और भक्त मक्खन-मिश्री का प्रसाद पा रहे थे। इस बार की यह व्यवस्था हिन्दुस्तान तो क्या, पूरे विश्व में पहली ऐसी व्यवस्था होगी। अब चाहे कोई इसकी नकल करे पर यह इतना आसान नहीं है। पूज्य बापूजी की सत्प्रेरणा एवं उनके सेवकों की निष्कामता से यह सहज-सुलभ हो जाता है। जिसने भी यह लीला देखी वह याद करता रहेगा। इस लीला की वी.सी.डी. बनायी गयी है। कौन कितना देख पाता है, समझ पाता है भगवान जानें।

पूज्यश्री ने कहा : ''ये भारत के भगवान कैसे अनोखे हैं कि प्रेम में ये आपका सब कुछ बनने के लिए तैयार रहते हैं। ये आपके माता, पिता, भाई, सखा, सेवक और पुत्र तक बनने को तैयार हैं। जीव बंधन में है, मुक्ति चाहता है तो भगवान मुक्त हैं, उन्हें बंधन में आने का शौक है। यशोदा, गोपियाँ तथा अनेक-अनेक भक्तों के बंधन में वे बँधे।''

पूज्य बापूजी कभी निर्दोष बालकवत् दिखते हैं तो कभी गंभीर ज्ञानसागर के धनी... कभी प्रेम की अठखेलियाँ करनेवाले नटखट कन्हैया के प्रतिरूप तो कभी भक्तों के सर्वांगीण हित का ध्यान रखनेवाले पूर्ण सद्गुरु... कभी सत्संगकर्ता आर्ष ऋषि तो कभी ध्यानयोग के मर्मज्ञ समर्थ योगी... कभी मंत्रयोग के अनुभवनिष्ठ ज्ञाता तो कभी कुंडलिनी जागरण के परम आचार्य... उनके इन विभिन्न रूपों को देख भक्त गद्गद हो जाते हैं व उनके शिष्य के रूप में धन्यता का अनुभव करते हैं।

पूज्यश्री ने जन्माष्टमी का पावन संदेश देते हुए कहा कि ''जब मानुषी बुद्धि का आरोहण अर्थात् ऊपर उठना पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तब एक शून्य-सी, अहंरहित अवस्था आती है और उसी समय इस आरोहण से मिलने के लिए परम सत्य (भगवान) का अवतरण होता है। आरोहण और अवतरण के सम्मिलन की इस मध्यावस्था में बुद्धि में छाये अंधकार में प्रकाश का प्राकट्य होता है। ऐसी ही अवस्था में गीता-ज्ञान का प्राकट्य हुआ। ऐसी ही सम्मिलन की अवस्था में भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात्रि के घोर अंधकार में प्रकाशाधार भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए तो चैत्र के शुक्लपक्ष की नवमी को दोपहर की धधकती धूप में माधुर्यसंपन्न, मर्यादा सिखानेवाले भगवान श्रीराम का अवतरण हुआ था। एक मध्यरात्रि को तो एक मध्याह्न में (अपने बापूजी भी ठीक मध्याह्न के समय ही अवतरित हुए थे)।

जन्माष्टमी के दिन उपवास करने से ७ जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, आरोग्य एवं बल बढ़ता है।

जन्माष्टमी के दिन **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** के जप से विशेष पुण्यलाभ होता है तथा रात्रि-जागरण कर जप-ध्यान करने से अमिट फल मिलता है। पूर्णिमा, जन्माष्टमी जैसे पर्वों के दिन गोबर, तिल, गोझरण आदि से बने उबटन से स्नान एवं पंचगव्य-पान से स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता में चार चाँद लग जाते हैं तथा ये पापनाशिनी, पुण्यदायिनी ऊर्जा को उभारते हैं। आप इनका लाभ लें तो आपको इसका अनुभव हो जायेगा।''

उपरोक्त प्रकार के उबटन से स्नान व पंचगव्य के पान का लाभ सभी शिविरार्थियों ने लिया। पूर्णिमा व्रत से होनेवाले ७ दिव्य लाभों पर भी पूज्य बापूजी ने प्रकाश डाला।
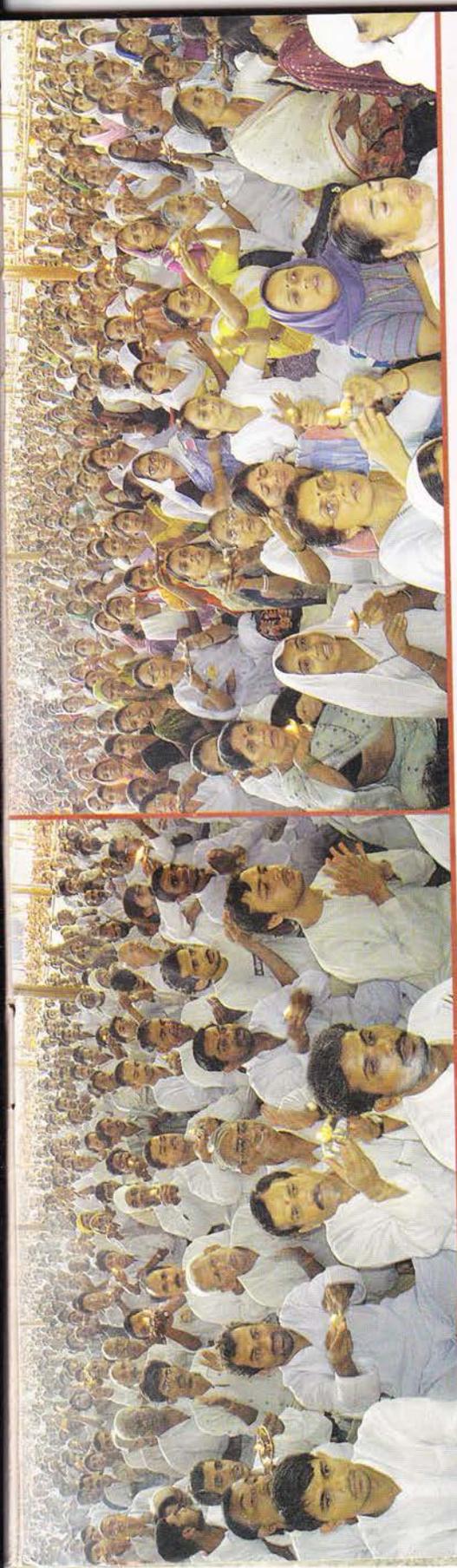
गोधरा (गुज.) में पूर्णिमा व्रतधारी पुण्यात्मा 'दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः ।'
प्रार्थना कर शत्रुवृद्धिनाशक साधना-सत्संग-आरती करते हुए।

सत्संग से सफल, सुखी व वास्तविक जीवन जीने की युक्तियाँ पाते हुए जीवन में जीवनदाता का
माधुर्य प्रकटाने की कला सीख रहे हैं सीकर (राज.) के ये पुण्यशाली सत्संगी।
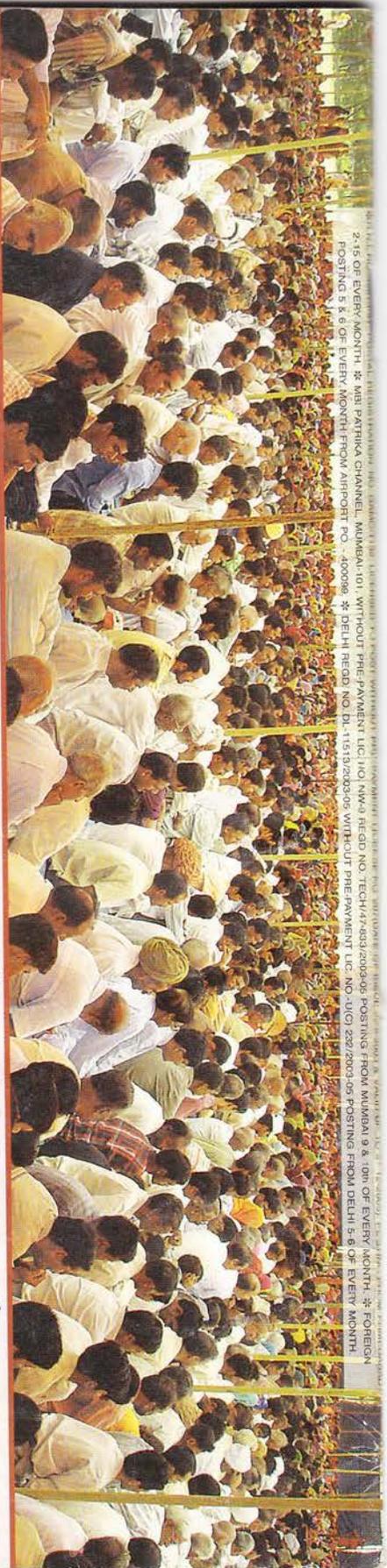
2-15 OF EVERY MONTH. ✽ MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✽ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✽ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH

कैसी मधुरता... कैसी शांति... कैसा ये आनंद है ! सदियों का भटका चंचल मन हो जाता तृप्त, प्रसन्न है ॥
ऐसे दिव्य सत्संग-अमृत का पान कर पुण्यात्मा, तृप्तात्मा हो रहे हैं झुंझुनू (राज.) के श्रद्धालु-भक्त ।

अमानगंज, जि. पन्ना (म.प्र.) क्षेत्र के बाढ़ग्रस्त गाँवों की संत श्री आसारामजी आश्रम की ओर से अन्न, वस्त्र, बर्तन, दक्षिणा आदि से स्नेहभरी सेवा करते हुए आश्रम के समर्पित साधक ।

'जीवन की सफलता है सत्संग के पाने में, प्रभु-प्रेम में डूब जाने में ।' - यही परम कार्य साध रहे हैं रेवाड़ी (हरि.) के ये श्रद्धालु-भक्त ।